गुरुत्तं

भाग-11

प्रवचनकार

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी

आचार्य श्री १०८ वसुनंदी जी मुनिराज

प. पू. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के पंचम आचार्य पद दिवस के अवसर पर प्रकाशित

कृति : गुरुत्तं भाग-11

मंगलाशीष : श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानंद जी मुनिराज

प्रवचनकार : आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी मुनिराज

संपादन : आर्यिका 105 वर्धस्वनंदनी

प्राप्ति स्थान : निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला, जम्बूस्वामी तपोस्थली बौलखेड़ा, कामॉ, भरतपुर (राजस्थान)

संस्करण : प्रथम सन् 2019

प्रतियाँ : 1000

मूल्य : स्वाध्याय

प्रकाशन : निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला

मुद्रक : ईस्टर्न प्रेस
नारायणा, नई दिल्ली-110028
दूरभाष: 011-47705544
ई-मेल: info@easternpress.in

अनुक्रमणिका

1. आदहिदं कादव्वं 7
2. बुद्धि और हृदय 27
3. लोकोऽयं नाट्यशाला 40
4. स्वकीय हित 57
5. आत्मा की शक्ति अपार है 80
6. जिणवयणमोसहमिणं 104
7. सिद्धचक्रं नमाम्यहं 118
8. स्वसंवेदी आत्मा 127
9. वीतरागी देव 136
10. आत्मस्वरूप 147

पुरोवाक्

जेण रागा विरज्जेज्ज, जेण सेएसु रज्जदि।
जेण मित्ती पमावेज्ज, तं णाणं जिणसासणे।।

मूलाचार, 322

जिससे राग से विरक्ति हो, जिससे कल्याण में अनुरक्त हों, जिससे मैत्री भाव बढ़े, जिन शासन में वही ज्ञान है।

गुरुपदेशादभ्यासात् संवित्तेः स्वपरान्तरम्।
जानाति यः स जानाति मोक्षसौख्यं निरन्तरम्।।

इष्टोपदेश, 33

जीव गुरुओं का उपदेश प्राप्त कर उसका अभ्यास करने से, ज्ञान से स्वपर का अंतर जानता है, वह मोक्ष सुख को निरंतर जानता है।

साहित्य की दृष्टि से मानव जीवन का सार्थक उत्कर्ष सम्यक्ज्ञान से होता है और वह सम्यक्ज्ञान का प्रकाश गुरुओं के माध्यम से ही संभव है। गुरु के उपदेश के बिना मानव अपने लक्ष्य को वैसे ही प्राप्त नहीं कर सकता जिस प्रकार मात्र परिधि पर घूमने का संकल्प करने वाला केन्द्र तक नहीं पहुँच सकता। गुरुवचन अज्ञान तिमिर को दूर करने के लिये सूर्य के समान, भव दुख से संतप्त प्राणियों के लिये अमृत के समान, चातक के समान तृषायुक्त भव्य जीव के लिये स्वाति की बूँद के समान, धर्म के बीज का वपन करने हेतु चेतना के धरातल को उपजाऊ बनाने के लिये मंद-सुगंधित वर्षा की बूँदों के समान, भव्य के मन-मयूर को हर्षित करने वाले पयोधरों के समान, मार्ग पर अग्रसर पथिक के लिये प्रकाश स्तंभ के समान होते हैं।

जिस प्रकार माता-पिता की अँगुली बालक को खड़ा करने में, चलाने में अवलम्बन रूप है उसी प्रकार गुरु के वचन मोक्ष मार्ग पर अग्रसर करने हेतु आलंबन हैं। आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी जी ने सर्वार्थसिद्धि में लिखा है-

''मूर्त्तमिव मोक्षमार्गमवाग्विसर्गं वपुषा निरूपयन्तं''।

सच्चा गुरु अपने मुख से कुछ बोले बिना ही अपनी क्रियाचर्या से संसारी प्राणियों को सही राह दिखा देता है। जब तक गुरुओं के वचनों से कर्णांजुलि तृप्त नहीं होती तब तक मोक्षमार्ग भी संभव नहीं होता। संप्रति काल में धर्म का प्रवर्तन करने वाले तीर्थंकर देव तो नहीं किंतु आचार्यों के माध्यम से 'जैनं जयतु शासनम्' का उद्घोष दिग्दिगंत तक प्रसारित हो रहा है। वे ही आज के तीर्थंकर प्रभु हैं। जिनेन्द्र प्रभु की वही वाणी आज गुरुओं के मुख से निःसृत है, किंतु भव्य प्राणी ही उसे सुनकर जीवन में अंगीकार कर सकते हैं। गुरुओं का सान्निध्य भी सातिशय पुण्य के उदय से ही प्राप्त होता है और तब ही उनकी वाणी का रसास्वादन किया जा सकता है।

प्रस्तुत कृति **गुरुत्तं भाग-11** में गुरुवर श्री के द्वारा दिये गये आत्महित के लिये प्रेरित करने वाले 'आदहिदं कादव्वं' 'आत्म स्वरूप' जैसे आध्यात्मिक व जिनेन्द्र भक्ति को वृद्धिंगत करने वाले प्रवचनों का संकलन है।

हमारे द्वारा प्रमादवश, अल्पज्ञतावश इस संपादन के कार्य में यत्किंचित् भी त्रुटि रह गई हो तो विद्वत्जन् संशोधित कर पढ़ें। नीर-क्षीर विवेकी हंसवत् गुणग्राहक दृष्टि बनाकर क्षीर रूपी गुणों का अवग्रहण करें। कषायों के वंचनार्थ व कल्याणार्थ गुरुवर श्री के

प्रवचनों का संकलन ''गुरुत्तं 11'' के रूप में किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक की पांडुलिपि तैयार करने में संघस्थ त्यागव्रती, मुद्रण प्रकाशन में सहयोगी धर्मस्नेही बंधुजनों को पूज्य गुरुवर श्री का मंगलमय शुभाशीष।

गुरुवर श्री का संयमपथ सदैव आलौकित रहे, शताधिक वर्षों तक यह वसुधा गुरुवर श्री के तप, ज्ञान, साधना से सुरभित रहे। परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी महाराज के चरणों में सिद्ध-श्रुत-आचार्य भक्ति सहित कोटिशः नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु.....।।

''सर्वेषां मंगलं भवतु''

श्री शुभमिति पौषकृष्ण त्रयोदशी
श्री वीर निर्वाण संवत् 2545
श्री दिगम्बर जैन मंदिर
ज्योति कॉलोनी, दिल्ली

ऊँ ह्रीं नमः
आर्यिका वर्धस्व नंदिनी
3 जनवरी 2019

''आदहिदं कादव्वं''

जीवन में आत्मकल्याण करना बहुत जरूरी है, यदि हम जीवन को कल्याण की राह पर नहीं ले जाते हैं तब हमारा मनुष्य जीवन अनर्थकारी ही सिद्ध होगा। जो व्यक्ति अपने प्रयोजन को सिद्ध नहीं करता है वह पुरुष रथ्या पुरुष कहलाता है, प्रमादी कहलाता है, विवेकहीन कहलाता है। जो व्यक्ति अपने प्रयोजन को सिद्ध करने में सक्षम है, समर्थ है, वही विवेकी है, ज्ञानी है, वंदनीय है, पूज्यनीय है, अभिनंदनीय है, स्मरणीय है।

''आदहिदं कादव्वं''

सबसे पहले आत्मा का हित करना चाहिये। प्रातःकाल जगकर सबसे पहले क्या करना चाहिये?-कोई कहता है सबसे पहले fresh हो जाओ, कोई कहता है मंदिर जाया जाये, कोई कहता है सबसे पहले 'बेड टी' ली जाये, कोई कहता है अखबार चाहिये, कोई कुछ-कोई कुछ अपने-अपने विचार देता है किन्तु अपनी आत्मा से एक बार पूछो वास्तव में तुम्हारी आत्मा का कल्याण कौन सा कार्य करने से है, उसी काम को पहले करना चाहिये। आचार्यों ने भी चार पुरुषार्थों में पहला 'धर्मपुरुषार्थ' कहा है।

जीवन की नींव

जिसका धर्म पुरुषार्थ प्रबल होता है वही मोक्ष पुरुषार्थ रूपी कलश को प्राप्त करता है। धर्म पुरुषार्थ जीवन रूपी सदन, भवन, जिनालय की नींव है। नींव जितनी मजबूत होती है वह सदन, भवन, जिनालय उतना ही मजबूत, भव्य होता है। जब नींव ही नहीं तो जिंदगी क्या दीवार खड़ी करते-करते ही निकालोगे। नींव ही नहीं तो छत कैसे डाल लोगे? नींव मजबूत करना बहुत

जरूरी है। नींव और शिखर ये दो बहुत महत्त्वपूर्ण हैं उसके बीच में जो दीवारें, छत और पिलर हैं वह उतने महत्त्वपूर्ण नहीं, चाहे कितनी भी मोटी दीवारें हों किन्तु दीवारों की नींव नहीं हो तो वे दीवारें बेकार हैं, चाहे कितना ही अच्छा लेन्टर डाला जाये किन्तु बिना नींव के कभी भी छत गिर सकती है।

किसी भी व्यक्ति से कह दिया जाये कि भैया आप यहाँ रहिये इसकी दीवारें और पिलर बहुत विशाल हैं किन्तु नींव नहीं है। वह कहेगा भैया आपके हाथ जोड़ता हूँ मेरी तो वह छोटी सी झोपड़ी ही अच्छी है, मैं खुले आकाश के नीचे रह सकता हूँ किन्तु तुम्हारे ऐसे भवन में नहीं रह सकता। जिस भवन की कोई नींव न हो, जिस भवन का कोई शिखर व कलश नहीं हो, वह भवन तो त्याज्य ही होता है वह निंदनीय, उपेक्षनीय होता है, हेय होता है। कोई भी प्रज्ञ पुरुष, विज्ञ पुरुष, विवेकी पुरुष उसमें प्रवेश भी नहीं करना चाहेगा।

महानुभाव! सबसे पहली सीढ़ी ''आदहिदं कादव्वं''-आत्मा का हित करना है। आज संसार में अधिकांश व्यक्ति धन कमाने के चक्कर में हैं, चाहे कैसे भी आये पैसा आये, ऐसे-वैसे जैसे-तैसे कैसे भी आये पैसा कमाना है। पैसे के पीछे ऐसा पागल हो जाता है कि सब कुछ भूल जाता है, पत्नी के प्रति कर्त्तव्य, माता-पिता के प्रति कर्त्तव्य, बच्चों के प्रति अपने कर्त्तव्यों को याद नहीं रखता सब कुछ भूल जाता है सिर्फ और सिर्फ पैसा चाहिये। चाहे सुबह से शाम तक लगना पड़े, चाहे शाम से सुबह तक लगना पड़े, चाहे चोरी करनी पड़े, झूठ बोलना पड़े, हिंसा करनी पड़े पर उसे तो पैसा चाहिये।

संस्कार बिना संपत्ति है मिट्टी

आज का युवक सोचता है कि पैसे के बिना तो जीवन ही नहीं है। उसके लिये पैसा ग्यारहवाँ नहीं पहला प्राण है। यदि

पैसा मेरे हाथ में है तो दुनिया मेरी मुट्ठी में है यदि पैसा मेरे पास नहीं तो कुछ भी नहीं है, मेरी कोई value नहीं, प्रतिष्ठा नहीं, मेरा कोई मान-सम्मान नहीं। मैं सब कुछ दाव पर लगा दूँगा पर पैसा तो कमाकर ही रहूँगा। जब पैसा आ जायेगा तब मैं अपनी प्रतिष्ठा कायम करूँगा। किन्तु वह बहुत बड़ी भूल में है, वह इस प्रकार पैसा कमा तो लेते हैं यद्यपि पैसा कमाना भी निबल पुरुषार्थी के बस की बात नहीं है जब भाग्य अनुकूल नहीं होता है तब व्यक्ति परिश्रम कर-करके थक जाता है पर पैसा हाथ में नहीं आता है। यदि कमा भी लेता है तो भोग नहीं पाता वह यूँ ही चला जाता है और कई बार ऐसा होता है खूब परिश्रम करता है, एड़ी-चोटी तक का जोर भी लगा देता है किन्तु फिर भी पैसा नहीं आ पाता। एक व्यक्ति कुछ भी नहीं करता सिर्फ मोबाइल की घंटी बजी, switch on किया कहा ok, yes शाम तक देखा 10-20 लाख आ गये। माथे पर पसीने की एक बूंद भी नहीं आयी, पैसा कमा लिया।

लक्ष्मी कमाने से नहीं, लक्ष्मी भाग्य से आती है। कमाना तो एक माध्यम है, बिना माध्यम के भी नहीं आती, किन्तु जब तीव्र पुण्य का उदय होता है तो मिट्टी को हाथ लगाओ वह भी सोना बन जाती है। तीव्र पुण्य का उदय होता है तब व्यक्ति यदि कंकड़-पत्थर को उठाता है तो वे भी हीरे-मोती बनकर सामने आ जाते हैं और जब पुण्य का उदय नहीं होता उस समय व्यक्ति भले ही दिन-रात परिश्रम करता है, मेहनत करता है किन्तु फिर भी पैसा नहीं कमा पाता।

चलो माना कि तुमने पैसा कमा भी लिया किन्तु कुछ व्यक्ति ऐसे हैं पैसा कमाने के लिये अपना परिवार भी दाव पर लगा दिया, शरीर भी दाव पर लगा दिया, प्रतिष्ठा आदि सब कुछ दाव पर लगा दिया। 20-40-50 साल तक बहुत मेहनत करके पैसा कमा

लिया, बैल की तरह से लगा रहा, गधे की तरह गृहस्थी में फँसा रहा, पैसा तो कमा लिया किन्तु स्वास्थ्य को गँवा दिया, शरीर में ऐसी कोई भयंकर बीमारी लग गयी जिसका कोई इलाज नहीं। परिवार में जो प्रेम वात्सल्य की सरिता बहती थी उसे सुखा दिया दिन के 24 घंटे में से 24 मिनट भी बच्चों को नहीं दिये, कभी उनसे प्यार से पूछा ही नहीं तो ऐसा बेटा वृद्धावस्था में उस बाप की क्या सेवा करेगा? क्या आज्ञा मानेगा, क्या उसका सम्मान करेगा, जिस बाप के पास धन कमाने से फुरसत ही नहीं है।

जिस पिता के पास अपने बच्चों को संस्कार देने का समय नहीं है, यदि संस्कार नहीं दिये और सम्पत्ति कितनी भी दे दी जाये वह सम्पत्ति मिट्टी है। उसने अपने परिवार को गँवा दिया, स्वास्थ्य को गँवा दिया वह अपने जीवन के अंत में सोचता है कि अभी तो मैं 50 वर्ष का भी नहीं हो पाया और डॉक्टर कहता है कि अब तुम ज्यादा दिन तक नहीं चल सकोगे। डॉ. कह रहा है तुम्हारा हार्ट बहुत कमजोर है, तुम्हें बाईपास सर्जरी करानी पड़ेगी, तुम्हें डायबिटीज हो गयी है इससे तुम्हारी किडनी काम करना बंद कर रही है, अब बस देख लो तुम ज्यादा न चल सकोगे। तुम्हें कभी भी ब्रेनहैमरेज हो सकता है और भी कोई problem आ सकती है इसीलिये सावधान रहो।

सावधानी क्या? अब तुम कुछ खा नहीं सकते? मतलब? घी, दूध, तेल, मीठा छूना नहीं, वह तुम्हारे लिए जहर का काम करेंगे, गेहूँ की रोटी नहीं खाना उसमें शुगर ज्यादा होती है, ज्यादा प्रोटीन भी नहीं लेना वह तुम्हारे लिये हानिकारक है फिर क्या करना है? बस मूँग की दाल के पानी में बिना चुपड़ी रोटी या मट्ठा में पानी मिलाकर खाना।

न तन बचा, न धन

तुमने कमाया, घर भर दिया किन्तु बिना पुण्य के तुम भोग नहीं सकते। घर के नौकर-चाकर मौजमस्ती कर रहे हैं और तुम सोच रहे हो मैंने रात-रात भर मेहनत की थी किन्तु मैं खा नहीं रहा। मेरे सामने मेरा सारा धन नष्ट हो रहा है, तुम्हारी आत्मा दु:खती है कि मैंने कितनी मेहनत की थी किंतु मैं इसे भोग नहीं पा रहा। शरीर अस्वस्थ होने पर डॉ. ने सब मना कर दिया, अब वह डॉ. के सामने हाथ जोड़ रहा है, गिड़गिड़ा रहा है डॉ. साहब चाहे कैसे भी हो, कितना ही पैसा लग जाये हम शरीर के बराबर धन तौल कर तुम्हें दे देंगे किन्तु हमें बचा लो। डॉ. कहता है ठीक है (मन में सोचता है वैसे तो रोग 5-6 दिन में ठीक हो जायेगा) 5-6 साल तक ये रोग चलेगा। अब क्या डॉ. को तो पैसा कमाने का अच्छा उपाय मिल गया, तुम्हारे शरीर के बराबर धन जो चाहिये उसके लिये रोज 1000 रू. की दवाईयाँ, इंजेक्शन का लम्बा-चौड़ा पर्चा तैयार है। और जो उसने पैसा 20 साल से लेकर 50 साल तक कमाया था **''धन कमाने के लिये तन को गँवा दिया अब तन को बचाने के लिये जितना कमाया था वह सब गँवा दिया। न तो तन का आनंद ले पाये और न धन का आनंद ले पाये''।**

महानुभाव! तन भी गया, धन भी गया, अपना स्वजन-परजन भी गया। कमाने के चक्कर में न तो यौवन में अपनी कोई प्रतिष्ठा बना पायी, न प्रौढ़ अवस्था में प्रतिष्ठा बना पायी, वृद्धावस्था आ गयी न समाज की कोई सेवा की, न परिवार की सेवा की, न धर्म की सेवा की, न भगवान् की पूजा पाठ के लिये समय निकाल पाये, न जिनवाणी का स्वाध्याय किया, न अभिषेक किया, न कभी विधान

आदि अनुष्ठान कराये बस समय यूँ ही पूरा हो गया, जैसे आये थे वैसे ही चले गये, कुछ नहीं कर पाये।

जीवन कल्याण के लिए है खिलवाड़ के लिए नहीं

एक बार एक बालक को किसी महात्मा के पास से 7 दिन के लिये पारसमणि रत्न मिल गया, वह सोचता है अब मैं इसके माध्यम से जितना भी लोहा होगा उसको सोना बना लूँगा। अब वह सोचता है लोहे की सबसे ज्यादा खदान कहाँ हैं, वहाँ से लोहा मँगवाना है, यह सोचते-सोचते पूरा दिन निकल गया, एक दिन चला गया छः दिन बचे, वह सोचता है कहाँ सस्ता मिलेगा और 4-5 दिन तक अलग-अलग फैक्ट्री में जाकर शुद्ध, हजारों टन लोहा इकट्ठा कर लिया। इस प्रकार इकट्ठा करते-करते 7वाँ दिन आ गया, महात्मा जी आ गये और पारसमणि उससे ले ली। वह कहता है महात्मन्! अभी तो मैंने कुछ बनाया ही नहीं, वे बोले-तूने बनाया या नहीं ये मैं कुछ भी नहीं जानता, बस 7 दिन का समय तुम्हारे पास था अब वह समाप्त हो गया। 7 दिन में तूने सोचा कि मैं 700 पीढ़ी की व्यवस्था कर लूँ किन्तु तूने अपने आप की व्यवस्था नहीं की, अपने घर में पड़े लोहे को तूने अगर सोना बना लिया होता तो तू सुखी हो गया होता।

महानुभाव! ये रूपक मैं नहीं जानता कि किस युवा का है किन्तु ऐसा लगता है आज के अधिकांश युवाओं पर यह लागू होता है, अधिकांश व्यक्ति इसी में डूब रहे हैं कि बस मौज मस्ती करो। जब तक युवा हो तब तक खूब शरीर को तोड़ लो खूब मेहनत कर लो, किन्तु यदि पहले से ही शरीर को थोड़ा-थोड़ा विश्राम देते रहोगे, पहले से धर्म क्रिया करते रहोगे, पहले से भगवान् से सम्पर्क

बना कर रखोगे तो वृद्ध अवस्था में आँसू बहाते हुये प्रभु के दर पर न आना पड़ेगा, तब तुम्हें ये नहीं कहना पड़ेगा कि हे भगवान्! मेरा कोई नहीं। मैंने तुम्हें कभी नहीं पुकारा, मैंने किसी का साथ नहीं दिया। जब संसार में मैंने किसी का साथ नहीं दिया तो मेरा साथ कौन देगा? मैंने तुमसे भी परिचय नहीं लिया, तुम भगवान् हो मैंने कभी तुमको भी भगवान् नहीं माना, मैं कभी तुम्हारे मंदिर भी नहीं आया, जब किसी ने मुझे भगवान् के दर पर जाने की कही भी तो मैंने कह दिया गर भगवान् की अटकी हो तो वो मेरे घर आ जायें, मेरे पास समय नहीं है।

तब तो कहता था भगवान् की अटकी हो तो मेरे घर आ जाये और अब? अब कहता फिरता है अटकी भगवान् की नहीं, मेरी है। भगवान् के दर पर आकर माथा पटक रहा है, नौ-नौ आँसू बहा रहा है-भगवान्! वास्तव में मैंने अपने जीवन के साथ खिलवाड़ किया। ये जीवन कल्याण के लिये मिला था, खिलवाड़ के लिये नहीं। अब बस! हाथ में से पूरी रस्सी कुयें में चली गयी अब कुयें में झाँकने से क्या होता है? जीवन की जो चंद श्वाँसें थीं, जीवन की जो डोर थी वह पूरी की पूरी चली गयी। यदि चार हाथ रस्सी भी बची होती तो उससे बाल्टी कुयें में से निकाली जा सकती थी, अपने पूरे जीवन को सफल और सार्थक किया जा सकता था। आचार्य महोदय कहते हैं कि जीवन का अंतिम अन्तर्मुहूर्त भी बच जाये उस समय भी तुम्हें होश आ जाये तो अपने जीवन को सफल और सार्थक किया जा सकता है।

संकल्प लें आत्महित का

जो व्यक्ति जीवन के अंत में भी बेहोश पड़ा रहे, उसे कौन जाग्रत कर सकता है? सोते हुये व्यक्ति को जगाने में दूर से

निमित्त तो बन सकते हैं किन्तु जगा नहीं सकते जब तक कि वह स्वयं जागना न चाहे। तो सबसे पहली जीवन की शर्त ये है कि **''आदहिदं कादव्वं''** मुझे सबसे पहले आत्मा का हित करना है। घर के बाहर कदम रखो तो ये नहीं कि मैं कमाने जा रहा हूँ या कहीं और जा रहा हूँ सबसे पहली बात यही कही कि मुझे पहले आत्मा का हित करना है और आत्मा का हित कैसे हो सकता है? यदि आत्मा का हित धर्म करने से होता है तो मैं हर क्षेत्र में धर्म को अग्रणीय स्थान दूँगा। रास्ते पर भी तुम देख-देख कर चलोगे कहीं मेरे पैर से कोई जीव न मर जाये, नहीं तो पाप लग जायेगा, पाप करने से मेरी आत्मा का अकल्याण हो जायेगा। मैं झूठ क्यों बोलूँ-झूठ बोलने से पाप लगेगा मेरी आत्मा पतित हो जायेगी, मेरी आत्मा दुर्गति में जायेगी, मैं झूठ नहीं बोलूँगा, सत्य बोलने से मेरा पेट भर सकता है तब मैं झूठ क्यों बोलूँ?

मैं चोरी क्यों करूँ? बिना चोरी के ही रह सकता हूँ, भगवान् ने मुझे इतना दिया है कि बिना चोरी किये मेरा पेट भर सकता है, बिना बेईमानी किये, बिना धोखा दिये मैं अपना पेट भर सकता हूँ। आज तक पेटी की पूर्ति किसी की नहीं हुयी। एक पेटी भरती है दूसरी आती है, दूसरी भरती है तो तीसरी-चौथी आती जाती हैं, अनेक बैंकों में खाते खुलते चले जाते हैं, देश में ही नहीं विदेशी बैंकों में भी खाते पहुँच जाते हैं किन्तु बेईमानी नहीं भरती। पेट भरने के लिये बेईमानी की आवश्यकता नहीं। पेट तो ईमानदारी से, बिना चोरी किये भी भर सकता है।

आप जानते हैं पेट भरने के लिये चार रोटी कहीं से भी मिल सकती हैं, पर्याप्त हैं, चाहे रूखी हो, सूखी हो, कैसी भी हो, दाल से, सब्जी से जैसे भी तुम्हें तुम्हारा मालिक देता है, तुम्हारा प्रभु

तुम्हें देता है जैन शास्त्रों के अनुरूप कहें तो जैसा तुम्हारा भाग्य, जैसा तुम्हारा पुण्य तुम्हें देता है वैसे स्वीकार कर लेना, क्योंकि भूख मिटाने के लिये रोटी पर्याप्त है। आप जो छप्पन प्रकार के व्यंजन खाते हैं वह भूख मिटाने के लिये नहीं स्वाद बढ़ाने के लिये खाते हो। कितना स्वाद लोगे? कब तक स्वाद लोगे? इन स्वादों में कहाँ तक डूबे रहोगे? क्या स्वादों की कोई इति श्री है? क्या स्वादों से कोई तृप्त हुआ है? एक के बाद दूसरे की इच्छा, तीसरे चौथे की इच्छा होती है ये स्वाद बदलते-बदलते जीवन ही बदल जाता है किन्तु स्वाद से विरक्ति नहीं हो पाती।

शांत करें तृष्णा की अग्नि

महानुभाव! इसीलिये आवश्यक है **''आदहिदं कादव्वं''** तुम्हारे पास भले ही दस मकान हैं किन्तु सोओगे या बैठोगे तो एक ही कमरे में न? तुम्हें सोने के लिये 5 फीट की जगह चाहिये, रहने के लिये छोटा सा कमरा भी पर्याप्त है, तुम्हारे 10 मकानों का क्या? उनमें तुम रहने नहीं जा रहे। व्यक्ति का जितना ज्यादा Area बढ़ता चला जाता है उतना ज्यादा पाप का विस्तार बढ़ता चला जाता है। क्योंकि व्यक्ति फिर तृष्णा के जाल में फँस जाता है और तृष्णा का जाल ऐसा है जो बढ़ता ही जाता है उसमें कभी full stop तो आता ही नहीं, जैसे किसी से आपने मूल पर ब्याज लिया तो उसका ब्याज बढ़ता ही चला जायेगा घटने का तो काम ही नहीं है। ऐसे ही तृष्णा एक ऐसी नदी है जहाँ से प्रारंभ होती है वहाँ पतली सी धारा होती है और बढ़ते-बढ़ते सागर तक धराशाही हो जाती है, पतित हो जाती है। जिस व्यक्ति के जीवन में ऐसी तृष्णा की नदी बहती है उसका जीवन भी अधोगति में चला जाता है, पतित हो जाता है।

महानुभाव! इस तृष्णा की अग्नि को शांत करो अन्यथा ये सब कुछ स्वाहा कर देगी, यह किसी को बक्शने वाली नहीं है, बाहर की अग्नि भी जब किसी को नहीं छोड़ती, जब लग जाती है तो धूँ-धूँ करके सब स्वाहा कर देती है तभी शांत होती है ऐसे ही तृष्णा की अग्नि जब तक तुम्हारे अंतरंग के सत्व को स्वाहा नहीं कर देगी तब तक शांत होने वाली नहीं है। इसीलिये सबसे पहले आवश्यक है **''आदहिदं कादव्वं''**। इसकी पहली शर्त है आत्मा को पहचानना, जानना। जानोगे कैसे? क्या अगरबत्ती जलाने से, क्या फूल चढ़ाने से, दीपक चढ़ाने से आत्मा को जाना जा सकता है? आत्मा का हित कैसे होगा? वह आत्महित है क्या चीज? तो विद्वत्वर दौलतराम जी की वे पंक्तियाँ शायद आपको याद हों-

''आतम को हित है सुख सो सुख,
आकुलता बिन कहिये।
आकुलता शिव माँही न तातें,
शिव मग लाग्यो चहिये॥

आत्मा का हित है-सुख प्राप्त करना। आत्मा को सुखी बना देना ही आत्मा का हित करना है। आत्मा को सुखी बनाने के लिये हमें ज्ञान की आवश्यकता है, सम्यक् दर्शन की आवश्यकता है, संयम की आवश्यकता है, वैराग्य, तप, ध्यान की आवश्यकता है इनको प्राप्त किये बिना आत्मा को सुखी नहीं बना सकते, और जिसने अपनी आत्मा को सुखी नहीं बनाया वह दूसरे को क्या सुखी बनायेगा? जो स्वयं संसार सागर में डूब रहा है वह दूसरे को क्या पार लगायेगा, जो स्वयं गंदगी में पड़ा है वह दूसरे को स्वच्छता कैसे प्रदान करेगा। तो पहली शर्त है हमें आत्मा की पहचान करना है। अपनी शक्ति को पहचानो जैसे हनुमान को शक्ति का बोध जामवंत

ने कराया। जब तक बोध न होगा तब तक आप अपनी आत्मा का कल्याण न कर सकोगे।

पहचानना होगा आत्मा को

चारुदत्त, भानुदत्त सेठ का पुत्र बचपन से तो धर्माचारी था, बाल्यावस्था से धर्मात्मा था, शादी होने के बाद भी उसने भोगों को छुआ तक नहीं। जब चारुदत्त की सास अपनी बेटी से पूछती है कि बेटी सुख-शांति से तो हो, तब वह कहती है-माँ कहाँ की सुख शांति, मेरे प्रियतम ने तो आज तक मेरा मुख भी नहीं देखा, शादी हुये इतने दिन हो गये। चारुदत्त की सास ने आकर चारुदत्त की माँ व पिता को उलाहना दिया कि जब तुम्हारा बेटा काम-विषय भोगों को जानता ही नहीं तो फिर शादी क्यों की? पुनः चारुदत्त की माँ ने अपने देवर से कहा-इसे किसी तरह भोगों के प्रति प्रेरित करो। उसका चाचा रुद्रदत्त, चारुदत्त को वेश्या के घर ले जाता है, वहाँ थोड़ी देर बैठने के पश्चात् चारुदत्त ने कहा-चाचा प्यास लगी है। इधर पानी लाने के लिये वेश्या से पहले ही कह रखा था तो उसने उसे मादक जल दे दिया जिससे उसे नशा आ गया।

वह चारुदत्त उस वेश्या के साथ चौपड़ खेलने लगा। वह वेश्या बोली यदि तुझे चौपड़ खेलना ही है तो मेरे साथ क्यों? मैं तो वृद्ध हो गयी मेरी बेटी बसन्तसेना के साथ खेलो। वह उसके साथ खेलने लगा और उसी के साथ मस्त हो गया, भूल गया सब कुछ, माता-पिता, पत्नी आदि सब भूल गया। व्यक्ति अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये किस निम्नतम तरीके को अपनाता है किन्तु बाद में उसके हाथ में कुछ भी नहीं आता। और हुआ यही वह चारुदत्त बारह वर्ष तक उस वेश्या के घर पर रहा, चारुदत्त के यहाँ से धन आता रहा-आता रहा जब अंत में चारुदत्त की पत्नी के कंगन और मंगलसूत्र भी आ

गये तब वेश्या समझ गयी अब इसके यहाँ कुछ भी नहीं है। चारुदत्त के पिता ने समाचार भेजा कि तेरा पिता बहुत अस्वस्थ है इसलिये तुम आ जाओ, उसने कहा-मैं कोई डॉ. नहीं, वैद्य हकीम नहीं यदि वे अस्वस्थ हैं तो उन्हें दिखाओ मैं नहीं आऊँगा। बाद में चारुदत्त के पिता ने समाचार भेजा-तुम्हारा पिता दिवंगत हो गया है इसीलिये तुम्हें आ जाना चाहिये, तो चारुदत्त ने कहा-जब मेरा पिता दिवंगत ही हो गया तो अब मैं जाकर क्या करूँगा उसका दाह संस्कार कर दो।

पिता ने सोचा ऐसे बेटे से तो बेटा ही न होता तो अच्छा था। वह दीक्षा लेने के लिये चला गया, फिर भी मोह की विडम्बना देखो वे घर के नीचे तक आ गये और अपनी पत्नी से कहते हैं देखो चारुदत्त यदि धन मँगाये तो उसे मना नहीं करना, दे देना। वही चारुदत्त जो वेश्या में आसक्त था जब धन नहीं रहा, बसंतसेना की माँ ने उसे बोरे में लपेट करके पीछे गटर में फिंकवा दिया, प्रातःकाल जब सूअर चाटने लगे तो वह कहता है-बसंततिलिके! मुझे परेशान न करो। एक कोतवाल ने देखा कि यहाँ से कोई आवाज आ रही है, देखा तो एक मनुष्य बेहोश पड़ा है, उसे वहाँ से निकाला गया, जब उसे होश आया तो वह अपनी हवेली की ओर भागा, लोगों ने उसे रोका कहाँ जाते हो? बोला अपने महल में जाता हूँ। कौन सी हवेली? अब ये तुम्हारी नहीं रही। तो मेरे माता-पिता कहाँ हैं? तेरे पिता ने दीक्षा ले ली। तेरी माँ व पत्नी गाँव-गाँव घूमती फिरती हैं। वह माँ-पत्नी के पास गया और लिपट कर रोने लगा, उसे जीवन में पहली बार पहचान हुयी कि मेरी पत्नी तो ये है कहाँ मैं वेश्या में आसक्त हो गया। फिर वह विदेश व्यापार करने के लिये जाता है।

व्यापार करने गया सात बार उसका जहाज फट गया जो भी कमाया सब उसमें समा गया। बाद में कमाकर लाया उसने पुनः

संसार के सुखों को भी भोगा उसके उपरांत दीक्षा लेकर के समाधि को प्राप्त कर सर्वार्थसिद्धि गया।

महानुभाव! जब तक उसे अपनी पत्नी की खबर नहीं थी तब तक वेश्या ही उसके लिए सब कुछ थी, वही उसके लिये माता-पिता, भाई-बहिन सबसे बढ़कर थी। इसी तरह व्यक्ति को जब तक अपनी आत्मा की खबर नहीं होती तब तक पंचेन्द्रिय के विषय उसे अपने लगते हैं इनके अलावा और कोई मेरा है ही नहीं, किन्तु महानुभाव! एक बार तो अपनी आत्मा को पहचानना पड़ेगा, ये हमारी आत्मा ही हमारी निधि है, ये बाहर की सम्पत्ति भौतिकता तो वेश्या की तरह से है ये केवल लुभाती है, घुमाती है, रमाती है किन्तु तुम्हें सही स्थान पर नहीं ले जाती। ये तुम्हें भ्रमित करती है, मूर्च्छित करती है तुम्हें तुम्हारे स्वभाव से दूर करती है, तुम्हें तुम्हारे स्वभाव में लीन नहीं होने देती। अतः लक्ष्मी को, पंचेन्द्रिय के विषयों को दूर से छोड़ देना चाहिए। इनका पोषण करने में तुम्हारी आत्मा का किंचित् भी हित नहीं है।

स्वागत किसका? सवार या सवारी

एक व्यक्ति अपने मित्र से मिलने के लिये गया, मित्र ने बड़ा स्वागत-सम्मान किया, उससे पूछा-भाई आप कैसे आये? उसने कहा मैं इस रथ से आया हूँ, पाँच घोड़ों का रथ था मैं उसकी बदौलत यहाँ तक आ गया। उस मित्र ने अपने आगन्तुक मित्र को कमरे में बिठाया और बाहर से कुण्डी लगा दी। मित्र अंदर बंद है और वह सारथी की सेवा में लगा है, घोड़ों की सेवा में लगा है, उन्हें दाना पानी दे रहा है। मित्र अंदर से चिल्ला रहा है, रो रहा है, दरवाजा तो खोलो, मैं यहाँ बंद हूँ, पराधीन हूँ, घुटन में हूँ, मेरी मुक्ति

करो, मेरा बंधन खोलो। वह मित्र कहता है-शांति से बैठ, जो तुझे यहाँ तक लेकर आया है पहले उसकी सेवा तो कर लूँ। वह कहता है मैं तेरा मित्र हूँ पहले मेरी सेवा तो कर। जैसे वह मित्र अपने मित्र की सेवा न करके घोड़ों की सेवा में लगा है, सारथी की सेवा में लगा है, घोड़े को दाना-पानी खिलाने से, सारथी को भोजन कराने से मित्र का पेट न भरेगा, उसको सुख शांति की प्राप्ति न होगी, ऐसे ही तुम पाँच इन्द्रिय रूपी घोड़ों को खूब खिलाओ पिलाओ तो तुम्हारी आत्मा सुखी नहीं होगी, मन-रूपी सारथी को कितना भी खिलायें पिलायें, मन को संतुष्ट करने से आत्मा संतुष्ट न होगी।

जो व्यक्ति इन पाँच इन्द्रिय रूपी घोड़ों की सेवा में लगा है, सारथी की सेवा में लगा है ऐसा व्यक्ति अपनी आत्मा के पास पहुँच ही नहीं सकता। उसकी आत्मा भी ऐसे ही बंद पड़ी है जैसे उस कमरे में मित्र को बंद कर दिया था। आवश्यकता है पहचानने की। कहीं सवार को छोड़कर सवारी के आदर-सत्कार में तो नहीं लग गए। कई बार हमारी आत्मा के सही स्वरूप को बताने वाले महात्मा और परमात्मा भी प्रकट हो जाते हैं किंतु हम उन्हें भी कहाँ पहचान पाते हैं। हमारी आँखें वही देखती हैं जो दृश्य वे देखना चाहती हैं। जिस दृश्य को हमारी आँखें देखना ही नहीं चाहतीं उसे कौन दिखा सकता है। जो चीज तुम देखना चाहते हो वह बंद आँखों से भी देख सकते हो और देखना नहीं चाहते तो सामने होते हुये भी नहीं देख पाते हो।

महानुभाव! बस प्रयास यही करना है संसार में तो बहुत भ्रमण कर लिया, संसार में बहुत कुछ देख लिया, संसार के लिये बहुत कुछ किया अब एक बार अपनी आत्मा के लिये कुछ करो। इस देह रूपी पिंजरे में आत्मा रूपी पक्षी कैद है यह भी मुक्त गगन

में विचरण करने वाला है, इसे भी मुक्ति चाहिये बंधन नहीं चाहिये। कोई भी आत्मा बंधन पसंद नहीं करती, हर आत्मा मुक्ति चाहती है। हर आत्मा का स्वभाव मुक्त हो जाना है किन्तु यह आत्मा इस देह में पड़ी है आश्चर्य है, और बात ये भी है कि इस शरीर से ही मुक्ति का रास्ता निकलता है अन्य किसी शरीर से नहीं। यही एक पिंजरा है जिसका दरवाजा खोलकर पक्षी को मुक्त किया जा सकता है। मनुष्य पर्याय के अतिरिक्त अन्य जो पिंजरे हैं उनमें पड़ी कोई भी आत्मा अपनी मुक्ति के दरवाजे को नहीं खोल सकती। महानुभाव! एक बार और प्रयास करो अपनी आत्मा की शक्ति को पहचानने का।

जागृत करें निज शक्ति को

किसी राजा का हाथी अपनी प्यास बुझाने के लिये भ्रमण करता हुआ नदी किनारे पहुँचा। वह पहले नदी में नहाकर तृप्त हुआ पुनः लौटकर जा रहा था जल्दी के चक्कर में लगा यहाँ सूखा है किन्तु देखा तो वहाँ दल-दल था। हाथी उसमें फँस गया। वह हाथी वहाँ से निकलने के लिये ज्यों-ज्यों ताकत लगाता है त्यों-त्यों उसके पैर और उसमें फँसते जाते हैं, ज्यों-ज्यों प्रयास करता है प्रयास मिथ्या होता चला जा रहा है हाथी बेचारा क्या करे? एक गीदड़ वहाँ आया-बोला-मूर्ख कहीं का, यहाँ सूखे से नहीं आ सकता था क्या? हाथी बेचारा सुन रहा है, शेर आया बोला-क्या तेरा शिकार करूँ चल छोड़, माफ करता हूँ। बिल्ली आयी म्याऊँ-म्याऊँ करके चली गयी जो आया वही चिढ़ा कर जाने लगा। जो व्यक्ति हारा हुआ होता है, गिरा हुआ होता है उसे सभी गिरा कर चलते हैं सभी ठोकर मारते हैं, दुतकारते हैं। वह हाथी राजा का प्रधान हाथी था जिस पर चढ़कर राजा युद्ध करता था, जो युद्ध में सबसे आगे चलता था आज उसी हाथी की इतनी दुर्दशा। उस हाथी की आँखों में आँसू आ गये,

वह वहाँ से निकले भी तो कैसे, बहुत मुश्किल। एक चूहा आया, हाथी से बोला मानता तो है नहीं किसी की, मैं सूतली लेकर आया हूँ तू इसे पकड़ ले मैं तुझे खींच लूँगा। हाथी के चेहरे पर हँसी आ गयी–क्या समय है? ये चूहा मुझे सूतली से खींचकर निकालेगा।

महानुभाव! कई बार ऐसा होता है कि इस आत्मा रूपी हाथी को निकालने के लिए जो भोग, मोह रूपी कीचड़ में फँसा हुआ है ऐसा एक भोगी पंडित सूतली फेंकता है, कहता है पकड़ लो।

अरे! जब तुम अपने आप को ही न निकाल पाये तो दूसरों को क्या निकालोगे। जब राजा को यह बात पता चली कि उसका प्रधान हाथी दलदल में फँसा है और निकल नहीं पा रहा तो उसने पूरे नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो कोई भी इस हाथी को निकालने में समर्थ हो जायेगा उसे मुँह माँगा इनाम दिया जायेगा। सब व्यक्ति हताश, निराश, उदास मस्तक नीचे करके बैठे हैं किसी से नहीं निकला। फिर एक वृद्ध मंत्री जो रिटायर्ड हो चुका था उसे बुलाया गया, मंत्री ने कहा–ठहरो! मैं हाथी को निकालने का प्रयास करता हूँ। मंत्री ने राजा से कहा–आप अपने सूचना मंत्री द्वारा खबर कहलवाईये कि शत्रु सेना ने आक्रमण कर दिया है, युद्ध की तैयारियाँ हो रही हैं, युद्ध के नगाड़े बजवाए जायें। जैसे ही युद्ध के नगाड़े बजने लगे हाथी अपना पूरा जोर लगाकर एक छलांग लगाता है और दल–दल से बाहर निकल आता है।

महानुभाव! युद्ध के नगाड़े सुनकर हाथी को अपनी शक्ति का अहसास हो गया कि मैं राज हाथी, राजपट्ट मुझ पर बँधा हुआ है, मैंने हजारों हाथियों को पछाड़ दिया। मुझे यहाँ से निकालने में कोई समर्थ नहीं। मैं स्वयं ही निकला हूँ स्वयं ही मेरी शक्ति जागृत हो गयी और मैं बाहर निकल आया, कहाँ की कीचड़, कहाँ की दल–दल।

आप लोग भी दिग्गज हाथी हो, आप फँसे हुये हो भोगों की कीचड़ में, आपको कौन निकाले? जो पहले ही फँसा हुआ है ऐसा विद्वान्-पंडित निकालने में असमर्थ है, जो स्वयं पानी में डूब रहा है वह तुम्हें कैसे निकालेगा। तुम्हें निकालने में तो सिर्फ तुम्हारी आत्मा की शक्ति समर्थ है। बाहर जब नगाड़े बजें, छोटे अन्य हाथी चिंघाड़ने लगें, जो छोटा हाथी हो और तुमसे चिंघाड़कर कहे, तब तुम्हारा अंदर का हाथी (चेतना) जाग्रत हो जायेगा और बाहर आ जायेगा।

सुनें आत्मा की आवाज को

महानुभाव! मेरा बस आप से यही कहना है कि आप अपनी आत्मा की शक्ति को पहचानो। इसे पहचाने बिना इसे जाग्रत नहीं किया जा सकता। सोयी हुयी चेतना को जगाओ सोये हुये को नहीं। मन सो रहा है तो सो जाने दो किन्तु आत्मा नहीं सोये। सोया मन तुम्हें पापों से बचायेगा, सोया तन तुम्हारी थकान दूर करेगा, सोया वचन तुम्हारी आत्मीय शक्ति वृद्धिंगत करने वाला होगा किन्तु सोया चेतन तुम्हें दुर्गति में ले जायेगा। इसीलिये चेतन को मत सोने दो। नींद आये तो तन को सुला दो, यदि थक गये हो तो वचनों को मौन दे दो, मन चिंतन करने में असमर्थ है, मन को विराम दे दो किन्तु चेतना को कभी विराम नहीं देना है आत्मा को जाग्रत रखो। आठों याम सचेत रहो कि किसी भी प्रकार मैं अपनी आत्मा की शक्ति को एकाग्र करके, प्रकट करके अपनी आत्मा को परमात्मा बनाकर ही रहूँगा, चाहे कुछ भी हो जाये। एक बार तो अंदर से आवाज आनी ही चाहिये। कभी-कभी तुम्हारे अंदर से आवाज आनी है पर लगता है नक्कारखाने की आवाज में तूती की आवाज कौन सुने? इतने नगाड़े बज रहे हैं इन्द्रियों और मन के कि तुम्हारी आत्मा की

आवाज को कौन सुने? जो आत्मा की आवाज को सुन लेता है वह कभी पाप कर नहीं सकता। आज भी पाप करने से पहले तुम्हारी आत्मा मना करती है, मत करो ये काम, अंदर से आवाज आती है पर मन तुम पर हावी हो जाता है चलो आगे बढ़ो। तुम्हारी आत्मा कहती है अच्छा काम कर लो पर मन-तन कहता है मैं थक गया मुझसे नहीं होता। ये मन बहुत बदमाश है।

''मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार है, सो साधु कोई एक''॥

आत्मबोध

महानुभाव! ये मन बहुत मीठा बदमाश है इसकी गुलामी हमने अनादिकाल से की है और मन के जो नौकर हैं, कौन? पंचेन्द्रियाँ, हमने इनकी भी चापलूसी की है। इस मन की, नौकरों की, नौकरों के नौकरों की सेवा करके आश्चर्य होता है हम अपनी आत्मा को भूल बैठे। अरे! हम तो तीन लोक के मालिक हैं और इन इन्द्रियों की गुलामी कर रहे हैं। इन विषयों पर आसक्त मेरा मन जो इनके पीछे भाग रहा है क्या मेरी यही औकात है? अपनी औकात को पहचानो। तुम्हारे अंदर बहुत जर्फ है, अपने अस्तित्व का जब तक बोध नहीं होगा तब तक अपनी आत्मा को कर्मों से मुक्ति न दिला सकोगे।

सबसे पहली यदि कोई आवश्यक चीज है तो वह है **''आदहिदं कादव्वं''** सबसे पहला कार्य आत्मा का हित करना चाहिये। शरीर मरे मर जाने दो, धन जाये जाने दो और भी कोई काम हो तो हो जाने दो। जनक की तरह से कह दो मिथिला में आग लग रही है महल जल रहे हैं, मिथिला के महल जलने से जनक का कुछ नहीं बिगड़ता है और जनक के हाथ-पैर जल रहे हैं तो

हाथ-पैर जलने से जनक का कुछ नहीं बिगड़ता, जनक की आत्मा तो आज भी सुरक्षित है। जो जनक की आत्मा नरक में तिल-तिल खण्ड करने से नहीं मरी, वह यहाँ भी नहीं मरेगी। जनक की आत्मा अजर-अमर है, वह अनंत है उसका अंत नहीं हो सकता, इसी तरह तुम्हें तुम्हारी आत्मा का बोध हो जाना चाहिये। जिसे अपनी आत्मा का बोध हो जाता है ऐसा वह आत्मा फिर विषयों में नहीं फँसता।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी जी ने समयसार में लिखा है एक व्यक्ति पराये वस्त्र पहनकर जाता है, सामने वाला व्यक्ति कहता है उतार मेरे कपड़े, वह कहता है तेरे कपड़े कहाँ से आये ये तो मेरे कपड़े हैं। पता लगाया तो वास्तव में दूसरे के कपड़े थे। पता लगते ही उसने वह वस्त्र तुरंत उतार कर फेंक दिये जैसे उसे उन कपड़ों से विरक्ति हो गयी ऐसे ही जिसे अपनी आत्मा का बोध हो जायेगा तो वह भी विषय वासना रूपी कपड़े उतार कर फेंक देगा, अपनी आत्मा के स्वरूप को स्वीकार लेगा।

आत्मज्ञान से वैराग्य

महानुभाव! अभी तक तुम पुद्गल की कीचड़ में फँसे हो, डूब रहे हो सिर्फ एक बार कर्मों से बँधी आत्मा को देख लो, एक बार शक्ति का बोध हो जाये तब तुम्हें कुछ भी नहीं करना है फिर सब अपने आप हो जायेगा, तुमसे कोई कुछ भी नहीं कहेगा। तुमसे सब मना भी करेंगे तुम किसी की भी बात नहीं मानोगे तुम अपना कल्याण करके ही रहोगे। भगवान् आदिनाथ स्वामी को खूब मनाया, खूब रोकने का प्रयास किया, दोनों पत्नियाँ, दोनों पुत्रियाँ, 100 पुत्र रो-रो कर रोक रहे हैं, प्रजा रो रही है। 4000 राजा कह रहे हैं आप दीक्षा लोगे तो हम भी दीक्षा ले लेंगे, आप हमें छोड़ कर कहाँ जा

रहे हो? वे महान् आदिस्वामी जी किसी के रोके से रुके नहीं और कल्याण पथ पर बढ़ गये।

वैराग्य का आशय है ''आत्मज्ञान''। आचार्य गुणभद्रस्वामी जी ने उत्तरपुराण में लिखा है-जब वैरागी को वैराग्य हो जाता है आत्मज्ञान हो जाता है तब वह दीक्षा ले लेता है, जब आत्म-ज्ञान नहीं होता केवल शब्द ज्ञान होता है तब तक वैराग्य नहीं होता है। शब्द ज्ञान के चाहे कितने ही पहाड़ लगा दो उससे सिर्फ और सिर्फ अहंकार की पुष्टि होती है। शब्द ज्ञान कभी बोध नहीं करा सकता, बोध कराने वाला तो अंतरंग का ज्ञान है जहाँ शब्दों की आवश्यकता नहीं है। शब्द भी निमित्त तो बन सकते हैं किंतु बिना शब्द के भी आत्मा का बोध हो सकता है, किसी वीतरागी मुद्रा को देखकर भी सम्यक्त्व हो सकता है शब्दों की आवश्यकता नहीं। किसी जिनालय को देखकर भी सम्यक्त्व हो सकता है शब्दों की आवश्यकता नहीं तुम्हें तो केवल आत्मबोध होना चाहिये।

आदहिदं कादव्वं, जइ सक्कइ परहिदं च कादव्वं।
आदहिद-परहिदादो, आदहिदं च सुट्ठु कादव्वं॥

सर्वप्रथम अपना हित करना चाहिए, पुनः यदि शक्ति हो तो दूसरे का हित करो। यदि व्यक्ति मात्र दूसरों का हित करने का प्रयास करता है तो वह मात्र अनधिकारी चेष्टा कर रहा है और अपना हित करता है व शक्ति होते हुए भी परहित नहीं करता, तब भी उचित नहीं। किन्तु सर्वप्रथम आत्म हित करो वही श्रेष्ठ है।

महानुभाव! आप सभी का शुभ हो, कल्याण हो।

श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।

''बुद्धि और हृदय''

महानुभाव! संसार में दो शब्द बहुत सुनने में आते हैं एक वह जो सबके पास में है, दूसरा वह जिसे व्यक्ति प्राप्त करना चाहता है। जो सबके पास है उसे लोग दु:ख कहते हैं और जिसे प्राप्त करना चाहते हैं उसे लोग सुख कहते हैं। सुख और दु:ख जीवन में ऐसे ही चलते हैं जैसे धूप और छाँव। सुख और दु:ख ऐसे चलते हैं जैसे दिन और रात, सुख और दु:ख ऐसे रहते हैं जैसे किसी नदी के दो किनारे। जीवन रूपी नदी एक किनारे के सहारे से नहीं चल सकती। तो जीवन में सुख-दु:ख दोनों हैं किन्तु सुख व दु:खों को प्राप्त करने का तरीका अलग है।

पैकिंग से सावधान

कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जो सुख के रास्ते पर चलकर भी दु:खों को इकट्ठा कर लेते हैं तो कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जो दु:खी दिखाई देते हुये भी सुख का आनंद लेते हैं। कोई व्यक्ति किसी को देखकर कहता है कि ये बहुत दु:खी है पर हो सकता है अंदर से वह बहुत सुखी हो। किसी व्यक्ति को देखकर लगता है ये बहुत सुखी होना चाहिये किन्तु अंदर से देखने पर वह बहुत दु:खी भी हो सकता है। जिसके चेहरे पर आपको मुस्कुराहट दिखाई दे रही है, हो सकता है उसके हृदय में बहुत दु:ख भरा हो, और जिसके चेहरे पर आपको उदासीनता दिखाई दे रही है, हो सकता है उसके अंदर बहुत आनंद हो। कई बार ऐसा होता है, किसी वस्तु की पैकिंग बहुत अच्छी हो पर माल खराब हो सकता है और कभी ऐसा भी हो सकता है कि वस्तु की पैकिंग खराब हो अंदर माल अच्छा भी हो सकता है।

संसार में दो प्रकार के व्यक्ति हैं एक जो Packing को देखकर माल ग्रहण करते हैं दूसरे जो माल को देखकर के माल

ग्रहण करते हैं। जो व्यक्ति माल को देखता है Packing को नहीं देखता वह जीवन में कभी धोखा नहीं खाता, जो व्यक्ति Packing को देखकर के माल का अनुमान लगाते हैं वे जीवन में प्राय:कर के धोखा खाते हैं। संसार में देखने में यह आता है कि सुख, दु:ख की पोशाक पहनकर दिन रात भ्रमण करता रहता है, किन्तु उस सुख को कोई स्वीकार नहीं करता और दु:ख का कितना साहस है कि सुख की पोशाक पहनकर जैसे ही बाहर निकलता है लोग उसे पकड़ लेते हैं। लोग क्या पकड़ते हैं वह उस व्यक्ति को पकड़ लेता है और उस पर हावी हो जाता है। किंतु जब व्यक्ति उसके साथ निवास करता है तब लगता है जिस अतिथि को मैंने सुख मानकर बुलाया था वह तो वास्तव में दु:ख का ढेर है। वह तो दु:ख ही दु:ख है सुख तो है ही नहीं बस इसकी केवल पोशाक सुख की थी, लेबल सुख का लगाकर के घूम रहा था और मैं इससे भ्रमित हो गया।

ऐसा इस इंसान के साथ कई बार होता है, जब अनेक बार ऐसा होता है तो व्यक्ति ठोकर खाते-खाते सावधान हो जाता है। फिर व्यक्ति जीवन में दु:ख की पोशाक वाले उस पदार्थ को अर्थात् सुख को स्वीकार कर लेता है।

बुद्धि की चूक

सुख और दु:ख की खोज बुद्धि के सहारे जीने वाले व्यक्ति नहीं कर सकते। बुद्धि जीवन में विश्लेषण कराती है, बुद्धि का काम गहराई तक जाना है बुद्धि का काम तलस्पर्शी अध्ययन है, बुद्धि का काम Top तक पहुँचाना है। बुद्धि गणित के साथ चलती है, बुद्धि में कुछ सिद्धान्त होता है, बुद्धि तर्क के बिना पंगु होती है। बुद्धि जब भी चलेगी अपने साथ तर्क और सिद्धान्त को लेकर चलेगी, बुद्धि कभी अकेली नहीं चलती। बुद्धि अपने पैरों से पंगु है इसीलिये अपने दोनों ओर तर्क और सिद्धान्त की वैसाखी लेकर चलती है यदि ये वैसाखी

न हो तो बुद्धि चल ही न सकेगी, वह जमीन पर धराशाही होकर गिर पड़ेगी। तो बुद्धि के साथ गणित की टॉर्च रहती है, वह समीकरण लेकर न चले तो वह चलेगी नहीं अंधी हो जायेगी, इसीलिये बुद्धि जब भी किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में अच्छे-बुरे की पहचान बताती है तब उस सामने वाले व्यक्ति या वस्तु का विश्लेषण करके बताती है। वह सिद्धान्त/गणित बताती है, वह कहती है 3+3=6 ही होते हैं। यह सिद्धान्त केवल बुद्धि के पास ही है Body के अन्य किसी Part के पास नहीं है। बुद्धि बहुत थोड़े से स्थान में रहती है। किन्तु उतनी ही ज्यादा खतरनाक होती है। शरीर का जो हिस्सा जितना छोटा होता है उतना ही ज्यादा खोटा होता है।

वह यदि अपना संतुलन बिगाड़ दे, तब निःसंदेह प्राणी के प्राणों को आहत कर दे। यदि थोड़ा भी संतुलन बुद्धि का बिगड़ जाये तो व्यक्ति कहीं से कहीं गिर सकता है। देखो यदि चलते समय पैर फिसल गया तो हो सकता है तुम्हारे पैर में चोट आ जाये। आप कोई वस्तु फेंक रहे थे हाथ चूक गया हो सकता है कहीं चोट लग जाये, यदि तुम्हारी निगाह कहीं चूक गयी तो तुम ठीक से वस्तु को देख नहीं पाये, हो सकता है कर्ण इन्द्रिय कहीं चूक गयी तो आप कोई शब्द सुनने में असमर्थ हो गये, हो सकता है घ्राणेन्द्रिय कहीं चूक कर गयी है तो आप सुगंध को ग्रहण नहीं कर पा रहे, हो सकता है रसना इन्द्रिय कहीं चूक जाये, वह स्वाद का सही कथन न कर पाये किन्तु इससे कोई बहुत बड़ी हानि नहीं होगी, ये जीवन में कोई बड़ी समस्या नहीं है किन्तु जीवन में यदि कोई बड़ी समस्या को उत्पन्न करने वाली बात है तो वह है बुद्धि की चूक।

बुद्धि यदि थोड़ी सी भी चूक जाये तब निःसंदेह बहुत बड़ी भूल होती है। कहा जाता है पढ़ा-लिखा व्यक्ति जब हिसाब में चूकता है तो दहाई की दहाई चूकता है। 1008 को 108 लिख देगा।

वह सीधा दहाई का अंक लिखने में चूक जाता है। या 1 करोड़ को 10 लाख लिख गया सीधे 90 लाख का नुकसान। जब अंक में व्यक्ति चूकता है तो हो सकता है वह अपनी गँवारु भाषा में कहेगा तो 1 करोड़ की चीज को 90 लाख कहेगा, या 1 करोड़ दस लाख कहेगा, उसकी चूक बहुत बड़ी नहीं होती है। बुद्धि की चूक जीवन में बहुत बड़ी है, बुद्धि का चूक जाना जीवन का सबसे खतरनाक सौदा है इसीलिये बुद्धि के साथ जितना ऊपर बढ़ने की संभावना है उतना ही नीचे गिरने की भी संभावना है। बुद्धि एक-एक सीढ़ी पर पैर रखकर चलना सिखाती है और एक-एक सीढ़ी पर पैर रखकर उतरना भी सिखाती है। जब व्यक्ति सीढ़ी से चूकता है तो एक साथ गिरकर भी आ सकता है किन्तु जब चढ़ता है तो एक-एक सीढ़ी क्रमशः चढ़ता चला जाता है।

बुद्धिमान् व्यक्ति कभी आकाश की ऊँचाईयों को एक साथ नहीं छूते, बुद्धिमान् व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से, अपने परिश्रम से, अपने विद्या व बुद्धि ज्ञान से आगे बढ़ते हैं, सम्मान प्राप्त करते हैं, प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, यश प्राप्त करते हैं और वे बुद्धिमान् व्यक्ति आगे बढ़ते जाते हैं। किन्तु दूसरी ओर ऐसे व्यक्ति हैं जो बुद्धि को कुछ भी महत्त्व नहीं देते। उनके जीवन में बुद्धि का कोई महत्त्व ही नहीं है क्योंकि बुद्धि के साथ सदैव चिन्तन है, विचार है, शब्द है, बुद्धि के साथ सदैव गणित है। बुद्धि जितना देती है उससे ज्यादा माँगने का प्रयास करती है और सुख आत्मा की ऐसी चीज है, निधि है, गुण है जो कभी माँगने से नहीं मिलता। सुख कभी गणित के हिसाब से नहीं मिलता।

हृदय से जीने वाले होते हैं मस्त

बुद्धि एक-एक कदम बढ़ाने का नाम है। दूसरी ओर है **''हृदय''**। हृदय एक-एक कदम नहीं बढ़ाता वह तो पंख खोलता है और एक बार में आकाश में उड़ जाता है, बुद्धि वाला तो एक-एक सीढ़ी

चढ़ता है किन्तु हृदय वाला व्यक्ति Lift से सीधे ऊपर जाता है यदि Lift कहीं रुक जाये तो वह जमीन पर नहीं गिरेगा वहीं रुका रह जायेगा, उसका ऊपर उत्थान न हो पर नीचे नहीं गिरेगा। बुद्धि वाला चढ़ता तो धीमे-धीमे है और गिरता है तो एक साथ धड़ाम से नीचे ही गिरता है।

बुद्धिमान् व्यक्ति प्राय:कर के दु:खी देखे जाते हैं और जो हृदय से जीने वाले व्यक्ति होते हैं वे बड़े मस्त रहते हैं, चाहे कुछ भी हो रहा हो, उनकी मस्ती में कहीं कमी नहीं आती। बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहे कितना ही लाभ हो रहा हो किन्तु यदि हिसाब लगाने में चूक जाये, या उसे ये लगे कि मुझे इस व्यापार में घाटा हो रहा है तो हो सकता है वह बुद्धिमान् व्यक्ति रात में सो न पाये और अगर प्रात:काल हिसाब मिल जाये तो कहेगा हाँ बहुत अच्छा हुआ। तो बुद्धिमान् व्यक्ति के जीवन में सुख और शांति सपने की तरह से आती है, आये और नींद खुलते ही चली जाये।

बुद्धिमान् व्यक्ति ऐसी ही सुख शांति को पकड़ता है, जैसे आकाश में चन्द्रमा उदित होता है और थाली में पानी रखकर चन्द्रमा की परछाई को देखकर संतुष्ट हो जाये क्योंकि उसे मालूम है कि चन्द्रमा की परछाई पानी में दिखाई देगी तो परछाई को पकड़ने का प्रयास करता है, और परछाई को ढक लेता है थाली में कि कहीं कोई और उस परछाई को छीन न ले, किन्तु जैसे ही थाली में ढक्कन लगाता है, चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब वहाँ से नष्ट हो जाता है, तो बुद्धिमान् व्यक्ति बुद्धि के पिंजरे में सुख-शांति को कैद करना चाहता है और जैसे ही सुख शांति को कैद करना चाहता है वैसे ही सुख शांति मर जाती है।

सुख-शांति का स्रोत है हृदय

यह सुख शांति पक्षी की तरह से है, पक्षी के बच्चों को यदि loose छोड़ दिया जाये तो वे उस पकड़ से निकल जाते हैं और

ज्यादा Tight किया जाये तो वे मर जाते हैं। बुद्धि-सुख और शांति को यदि बड़ी कठिनता से पकड़ती है तो उस सुख-शांति के प्राण निकल जाते हैं, और यदि बुद्धि सुख-शांति में थोड़ा loose हो जाती है तो सुख-शांति निकलकर के बाहर आ जाती है। किन्तु हृदय के सहारे जीने वाला व्यक्ति कभी भी जीवन में असफल नहीं होता। हृदय के सहारे जीने वाले व्यक्ति के जीवन में पराजय तो कभी होती ही नहीं है वह तो सदैव विजय ही विजय को प्राप्त करता है। उसके जीवन में पतन तो है ही नहीं। स्थिरता हो सकती है किन्तु जितना है, उत्थान है।

हृदय सुख और शांति का स्रोत है, हृदय कहता है सुख और शांति कहीं बाहर से नहीं मिलेगी, मुझे बाहर से चाहिये ही नहीं, सुख और शांति मुझे अंदर से पैदा करनी है। हृदय के सहारे जीने वाले व्यक्ति ऐसे हैं जैसे अपने खेत में कुँआ खोदकर के पानी का स्रोत प्राप्त कर लेना। बुद्धि के सहारे जीने वाला व्यक्ति वह है जो बाहर से एक बाल्टी पानी उधार माँगकर लाता है और चुल्लु-चुल्लु भर पानी लेकर एक-एक पेड़ को सींच रहा है जब तक वह सींचता है तब तक सूख जाता है। तो बुद्धि के सहारे जीने वाला व्यक्ति कभी अगाध-निस्सीम अनंत आनंद को प्राप्त नहीं कर सकता क्योंकि, बुद्धि कभी अनंत नहीं होती, बुद्धि अनंत को झेल नहीं सकती बुद्धि की एक सीमित क्षमता है। जो बुद्धि के परे है वह उसे ग्रहण नहीं कर सकती।

जिस पात्र में 1 लीटर पानी आ सकता है उसमें 10 लीटर, 100 ली. या 1 क्विंटल पानी कैसे आ सकता है। तो बुद्धि की पकड़ सीमित होती है किन्तु हृदय की पकड़ निस्सीम होती है। हृदय आकाश की तरह से खुला होता है, अनंत होता है, निस्सीम होता है और हृदय सबके लिये स्थान देना जानता है। आज तक आकाश ने

कभी किसी से स्थान नहीं माँगा है उसने सबके लिये स्थान दिया है संसार में चाहे कोई अच्छे से अच्छा हो या बुरे से बुरा, जीव हो चाहे अजीव हो, पुद्गल द्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश द्रव्य, काल द्रव्य कोई भी हो यह सबको स्थान देता है।

हृदय को आकाश की उपमा दी जाती है तो बुद्धि को पात्र की उपमा दी जाती है। जितना बड़ा पात्र होगा, 1 ली. के बर्तन में 1 ली. ही दूध या पानी आ सकता है उससे ज्यादा नहीं। उससे ज्यादा भरने का दुःसाहस मूर्खता है किन्तु हृदय के सहारे जीने वाला व्यक्ति कहता है कि यहाँ गिनती गिनने की तो कोई बात ही नहीं है कितना आयेगा, कितना नहीं आयेगा ये तो आकाश है हम नाप नहीं सकते, आकाश से पानी की एक बूंद भी गिर सकती है और इतना पानी भी बरस सकता है कि सागर के सागर भर जायें, बाढ़-तूफान भी आ जाये। तो वह आकाश तो निस्सीम है, इतने सारे पानी को भी रख सकता है।

बुद्धि के सहारे जीने वाला व्यक्ति कहेगा पानी को स्थान तो चाहिये। 5 लीटर की बाल्टी है तो 5 ली. ही पानी आयेगा 6 ली. नहीं। और ज्यादा पानी रखोगे तो और बड़ा बर्तन चाहिये। उसकी एक निश्चित क्षमता है ज्यादा बड़ा कर नहीं सकता। बुद्धि के सहारे जीने वाला व्यक्ति वह निस्सीम आकाश को, निस्सीम बादलों को, जलधारा को स्वीकार न कर पायेगा, किन्तु हृदय के सहारे जीने वाला व्यक्ति जानता है कि जब हृदय से आनंद की वर्षा होगी तो आकाश में कितने ही सघन बादल छाये हुये हों जब बरसेंगे तो न बूंदें गिनी जा सकती हैं, न जल की धारा को गिना जा सकता है, न पानी को लीटर और इंच से नापा जा सकता है। कितना पानी बरसा, जितना हृदय देने का भाव रखता है उतना बरसता चला जाता है

जिस प्रकार सूर्य पानी को तपा रहा है तब भी वह समुद्र पानी दे रहा है। पानी को वाष्प बनाकर उड़ा रहा है तब भी उसका देना बंद नहीं होता। उसी प्रकार हृदय रूपी सरोवर को वियोग रूपी सूर्य तपाता है। हृदय में कितनी ही वियोग की पीड़ा हो, विरह की अग्नि जल रही हो तब भी हृदय समर्पित ही रहता है, अपने प्रेम को कम नहीं करता। वियोग में हृदय दु:खी है, रो रहा है, विकल्प हो रहा है तब भी उसने अपना प्रेम देना बंद नहीं किया। एक माँ अपने बेटे के वियोग में दु:खी है। वह बेटा उसके अनुकूल नहीं है फिर भी माँ का वात्सल्य प्यार कम नहीं होता, फिर भी माँ उढ़ेल-उढ़ेल कर वात्सल्य देती है। बेटा कितना ही कुपुत्र/कुपूत हो जाये माँ का वात्सल्य कभी कम नहीं होता। वह चन्द्रमा की चाँदनी की तरह से अपने सब बेटों पर अपने प्यार का प्रकाश लुटाती है, लाड़-प्यार करती है।

बुद्धि माँगती है, हृदय त्यागता है

तो महानुभाव! जो हृदय के सहारे जीने वाले होते हैं वे अपने हृदय के संतप्त रहते हुये भी, दूसरों से कभी याचना नहीं करते। बुद्धि कहती है-पहले 'ला' बाद में 'दूँगा'। पहले मुझे दे, पहले माँगने का भाव रखा है बाद में देने का आश्वासन देती है, हृदय ने जीवन में कभी किसी से कुछ माँगा ही नहीं। हृदय के सहारे जीने वाले कभी याचना करते ही नहीं, दान देना चाहते हैं। वह व्यक्ति देकर के संतुष्ट होता है लेना तो जानता ही नहीं। यदि कोई व्यक्ति उन्हें दे तब भी ऐसा लगता है जैसे उन पर भार सवार हो गया। हृदय पर भार नहीं रखा जा सकता, हृदय तो Pumping करता है, रक्त को प्यूरीफाई करता चला जाता है store नहीं करता। हृदय का काम यही है, जो उसके पास है उसे शुद्ध करके बाहर फेंकता चला जाता है।

तो हृदय के सहारे जीने वाला व्यक्ति स्वस्थ रहता है। हृदय की गति अगर रुक जाये तो व्यक्ति वहीं मर जाये। यदि हृदय अपना काम करना बंद कर दे तो व्यक्ति ही मर जाये और यदि मस्तिष्क अपना कार्य करना बंद कर दे तो व्यक्ति मरेगा नहीं कई वर्षों महीनों तक जीवित रह सकता है। वह अवचेतन अवस्था में रह सकता है किसी को जानेगा नहीं, पहचानेगा नहीं, देख नहीं रहा, बोल नहीं रहा बेहोश पड़ा है वह जी सकता है क्योंकि उसका हृदय काम कर रहा है। जिसका हृदय कार्य करता रहता है भले ही बुद्धि काम न करे, इन्द्रियाँ भले ही कार्य न करें तब भी वह व्यक्ति मरेगा नहीं, वह जीवित रह सकता है। हृदय के सहारे जीने वाला व्यक्ति बेहोश अवस्था में भी अंदर में आनंद का अनुभव कर सकता है। किन्तु हृदय की नसें Arteries Block हो गयीं तो वह ज्यादा जी न सकेगा उसका हृदय आघात हो जायेगा। हृदय पर हुआ आघात व्यक्ति को तुरंत वहाँ से उठा लेता है चेतना कूच कर जाती है, प्राण निकल जाते हैं और यदि mind पर attack होता है तो पुनः व्यक्ति कोमा में तो चला जायेगा पर मरेगा नहीं। तो महानुभाव! बुद्धि के सहारे जीने वाला व्यक्ति वैश्य कहलाता है। हृदय के सहारे जीने वाला व्यक्ति क्षत्रिय कहलाता है।

हृदय center में है जो कंठ और उदर के बीच में है और मस्तिष्क में बुद्धि रहती है। वह सब पर राज्य करना जानती है किसी के सामने झुकना नहीं जानती। हृदय बीच में रहकर के उदर के लिये भी पवित्रता प्रदान करता है और कंठ से निकलने वाली आवाज को भी शुद्ध करके निकालता है, यह हृदय अपना प्रकाश मस्तिष्क तक पहुँचाता है। जब-जब मस्तिष्क में हृदय का प्रकाश पहुँच जाता है तब-तब बुद्धि को आनंद आता है। जब हृदय का प्रकाश बुद्धि मस्तिष्क तक नहीं पहुँच पाता है तब-तब वह बुद्धि के सहारे से अंधकार में लाठी चलाकर रात्रि को भगाने जैसी चेष्टा करता है।

महानुभाव! बुद्धि तोड़ने का कार्य करती है, हृदय जोड़ने का कार्य करता है। बुद्धि लेना जानती है हृदय देना जानता है। प्राणी को हृदय से जीना चाहिये। वह पहले अपना परिचय हृदय से करे बुद्धि से बाद में। व्यक्ति यदि हृदय से परिचय कर लेता है तो निःसंदेह वह मस्तक उस पर हावी नहीं हो सकता, हृदय के सहारे यावज्जीवन संतुष्ट रहता है। जिसका परिचय अक्रम से हो गया, पहले बुद्धि से हो गया, हृदय से परिचय नहीं हुआ तो वह जीवन में सुख शांति न पा सकेगा।

English alphabate में भी आप जानते हैं पहले 'H' Heart आता है बाद में 'm' mind। तो पहले व्यक्ति Heart के पास पहुँचे। यदि Heart को Hurt हो जाये तो बहुत दुःख होता है। Mind को तो कई बार make-up किया जाता है।

महानुभाव! वह बुद्धि का घोड़ा ऐसा है जो दौड़ता जाता है और कहीं भी गिरा देगा किन्तु हृदय के घोड़े पर बैठने वाला वह सजग रहेगा, वह गिरायेगा कभी नहीं, कहीं न कहीं पहुँचायेगा। हृदय की नाव में बैठने वाला व्यक्ति पार उतर जायेगा, उसकी नाव कभी डूब नहीं सकती। जितने भी भक्त हुये सब हृदय के सहारे जीने वाले हुये, उन्होंने भक्ति के आधार से प्रभु परमात्मा को प्राप्त कर लिया, उन्होंने कभी विद्या और बुद्धि का प्रयोग नहीं किया, उन्होंने कभी पुस्तकों और शास्त्रों को नहीं पढ़ा। वे अपने प्रभु परमात्मा को जिस रूप में स्वीकार करते हैं उस रूप में स्वीकार किया और प्राप्त करके ही रहे। बुद्धिमान् व्यक्ति उन्हें पागल कहते रहे किन्तु उन्होंने परवाह नहीं की, वे ये सोचते रहे कि यदि कोई हमें पागल कहकर खुश हो रहा है तो खुश होने दो हमें कोई फर्क नहीं पड़ता है। बुद्धि के सहारे जीने वाला व्यक्ति अपने आप को कभी पागल कहना स्वीकार नहीं करेगा, केवल हृदय के सहारे जीने वाला व्यक्ति ही दूसरों के

अपशब्दों को सहन कर सकता है। कोई पागल कहे, पापी कहे, कुछ भी कहे जो हृदय के सहारे जीता है वह अपनी मस्ती में मस्त रहता है, उसके जीवन में दु:ख छू भी नहीं सकता। जो बुद्धि के सहारे जीता है उसे दूसरों की बात चुभती है।

जीएँ, हृदय के सहारे

बुद्धि के सहारे जीने वाले की आत्मा में ऐसा घाव हो जाता है कि थोड़ी सी हवा भी उसे चुभ जाती है जैसे घाव में थोड़ी भी हवा लगे तो चुभेगी, धूल लग जाये तो भी चुभेगी। पर हृदय के सहारे जीने वाले का हृदय इतने पाषाण का हो जाता है कि उसे हवा एवं धूल नहीं लगती। उनका हृदय जल्दी से टूटता नहीं है। उनका हृदय इतना नाजुक नहीं होता, इतना मजबूत विशाल, उदार हो जाता है कि यदि व्यक्ति हृदय पर आघात भी करे तो भी सहन कर लेता है। वह मस्त रहता है, उसे कुछ भी फर्क नहीं पड़ता चाहे दुनिया में अच्छा हो रहा है या बुरा हो रहा है, चाहे शरीर टूट रहा है चाहे छूट रहा है। चाहे लोग शरीर का सम्मान कर रहे हैं चाहे अपमान कर रहे हैं। हृदय के सहारे जीने वाला व्यक्ति तन से, वचन से और मन के धरातल से बहुत ऊँचा पहुँच जाता है इसीलिये हृदय के सहारे जीने वाला व्यक्ति जितना सुख-शांति का अनुभव कर सकता है बुद्धि के सहारे जीने वाला व्यक्ति उतना सुख-शांति का अनुभव जीवन में कभी भी नहीं कर सकता है।

तो महानुभाव! मैं संक्षेप में आपके लिये बस इतना ही कहना चाहता हूँ कि जीवन में हृदय के सहारे जीना सीखें, हृदय के सहारे जीओगे तो माता पिता के साथ जीओगे, हृदय के सहारे जीओगे तो बच्चों के साथ जीओगे, हृदय के सहारे जीओगे तो अंदर में ऐसी क्रियायें होंगी जिनका आपस में कोई sense नहीं है पर वे

क्रियायें आपके तनाव को दूर करने वाली होंगी, आपको सुख शांति देने वाली होंगी। बुद्धि के सहारे जीने वाला व्यक्ति कोई भी क्रिया निरर्थक नहीं करना चाहेगा, हर क्रिया के पहले पूछेगा ऐसा क्यों करूँ? इससे क्या होगा? तो बुद्धि हमेशा उत्तर माँगती है, तर्क पैदा करती है, और तर्क ज्यादा चलते नहीं हैं। वैसाखी के सहारे चलने वाला व्यक्ति उस ऊँचाई को नहीं छू सकता, जब समतल जमीन में चलने पर भी उसे कठिनाई होती है उसके कंधे दु:ख जाते हैं, चलना उसके लिये असहाय हो जाता है, तब उसके लिये पहाड़ पर चढ़ना तो मुश्किल है।

बुद्धि के धरातल पर फिसलते हैं पैर

वैसाखी के सहारे जो जी रहा है वह एक-एक सीढ़ियाँ कैसे चढ़ेगा इसलिये बुद्धि ज्यादा ऊपर तक नहीं पहुँचा सकती। कहीं तर्क और सिद्धान्त रूपी वैसाखी का सहारा छूट गया तो वह धराशाही होकर नीचे आ जाता है। और जो हृदय के सहारे जीता है वह तो सीढ़ियाँ चढ़ता ही नहीं, वह तो बस नीचे से ही उड़ान भरता है और सीधा हंसराज की तरह से, राजहंस पक्षी की तरह से Top पर जाकर पहुँच जाता है। जो अरिहंत बने, सिद्ध बने वे हृदय के सहारे जीकर पहुँचे। जो बुद्धि के सहारे जीये वे संसार में ही गोता खाकर डूबे रहे, कभी मंजिल को प्राप्त नहीं कर पाये।

महानुभाव! आप जीवन में जितना बुद्धि के सहारे जीओगे उतना दु:खी होंगे, तनाव ग्रसित रहोगे, उतनी ही आपको संक्लेशता बनेगी और जितना हृदय के सहारे जीओगे उतनी मस्ती से जी सकते हो। हृदय से जीना अगाध जल में मछली की तरह से आँख बंद करके जीना है जैसे अगाध जल में मछली आनंद से डुबकी लगाती है ऐसे ही हृदय के सहारे जीने वाला व्यक्ति आनंद के सागर में

डुबकी लगाता है किन्तु बुद्धि की कीचड़ में चलने वाला व्यक्ति पैर संभाल-संभाल कर रखता है, फिर भी उसमें गिर पड़ता है, उसके पैर फिसल जाते हैं। बुद्धि की जमीन बहुत चिकनी है उस पर पैर फिसलते ही फिसलते हैं और जो आनंद का सागर है उसमें तो निर्मल स्वच्छ जल भरा पड़ा है, नीचे डूब गये तो रत्नाकर है रत्न ही रत्न हैं। ऊपर उबर गये तो Top पर पहुँच गये। सागर के जल में सीढ़ियाँ नहीं होती ऐसे ही हृदय के सरोवर में सीढ़ियाँ नहीं होती। हृदय के सागर में जब उछाल आती है तो Top पर पहुँच गये, Top पर पहुँचने पर ही जीवन का चरम लक्ष्य साध्य प्राप्त होता है और यदि Bottom पर पहुँच गया तो नीचे तो रत्नों का ढेर लगा है। हृदय के सागर में कोई घाटे का सौदा नहीं है, बुद्धि के व्यापार में कोई लाभ का सौदा नहीं होता।

इसीलिये मेरा संक्षेप में आपसे बस इतना ही कहना है कि-हृदय के सहारे जीना सीखो, बुद्धि की बातों में न आओ, बुद्धि बहकाने का प्रयास करती है। वह तुम्हें बहलायेगी, फुसलायेगी, पुचकारेगी, लोभ भी देगी किन्तु ऐसे लोभ में नहीं आना चाहिये। अपने जीवन में कुछ समय ऐसा निकालो जब बुद्धि से रहित होकर तुम जी सको, बुद्धि से रहित होकर जब जीओगे तो एक दिन तुम नियम से शुद्ध और बुद्ध बन जाओगे। बुद्धि के सहारे ज्यादा जीने का प्रयास कर लिया तो एक दिन तुम बुद्धू बनकर के घर लौट आओगे, इसीलिये बुद्धि के सहारे नहीं हृदय के सहारे जीयो, यही मेरा आप सबके लिये मंगल आशीर्वाद है।

श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।

''लोकोऽयं नाट्यशाला''

महानुभाव! यह लोक नाट्यशाला है, लोक शब्द का अर्थ होता है-'देखना' और नाट् शब्द-अर्थात् दूसरों को रंजायमान करने के लिये की गयी बनावटी क्रियायें, दूसरों के चित्त का अनुरंजन करने के लिये, दूसरों को लुभाने के लिये, रिझाने के लिये, खुश करने के लिये जो मन, वचन, काय की चेष्टायें की जाती हैं वे सभी नाटक की श्रेणी में आ जाती हैं। ये संसार एक रंगमंच है किंतु हमें ये रंगमंच दिखाई नहीं देता, ये संसार तो असार है किंतु हमें तो सुख का सार दिखाई देता है। हमने तो संसार की परिभाषा ही बना ली है जिसमें समीचीन सार दिखाई दे रहा है वही संसार है। किन्तु संसार की परिभाषा है-

संसरति अनादिकालेण यस्मिन् संसारः

जिसमें जीव अनादिकाल से संचरण करता है, संसरण करता है जिसमें अशांति-कलह आदि को भी प्राप्त करता है वह संसार है और जहाँ सुखों को प्राप्त करना प्रारंभ हो जाता है वह संसार सागर का किनारा है। महानुभाव! ये संसार दुःखमय है ऐसा लोग कहते हैं कि असार है, स्वार्थी है, अनंत है किंतु सत्यता ये है कि आप सभी का मन इस बात को स्वीकार नहीं करता, यदि संसार असार है, दुःखमय है, स्वार्थी है तो फिर आप इस संसार में रह कैसे रहे हो, इसका आशय यह है कि अभी आपको संसार दुःखमय नहीं लग रहा। जब संसार आपको ज्येष्ठमास का भयंकर ताप देने वाला लगेगा तो फिर आप उसमें रहना न चाहेंगे, फिर किसी जिनेन्द्रदेव की शीतल छाया में आने के लिये प्रयासरत हो जायेंगे। यदि संसार आपको असार लगेगा तो आप जो संसार में सारभूत चीज है उसको प्राप्त करने का पुरुषार्थ करेंगे।

मात्र शब्दों का ढेर नहीं

जब तक व्यक्ति को सही ज्ञान नहीं होता तब तक व्यक्ति अज्ञान पूर्वक चेष्टा कर सकता है, सही ज्ञान होने पर उसकी चेष्टायें अज्ञान युक्त नहीं हो सकती। एक व्यक्ति होटल में दूध पीने के लिये गया, उसके साथ उसके 2-4 साथी और भी थे, वे भी दूध पीने गये थे। वहाँ जिस कढ़ाई में दूध गरम हो रहा था, संयोग की बात उसमें ऊपर से छिपकली गिरी, हलवाई ने फटाफट उसे निकालकर नीचे भट्टी में डाल दिया, और उस दूध को फेंट कर मीठा, बादाम, केशर डालकर के परोस दिया। सभी लोगों ने दूध का गिलास ले लिया किन्तु जिसने यह कृत्य देख लिया था कि छिपकली गिरी है और हलवाई ने उसे झट बाहर निकाल दिया है वह कहता है मैं तो ये दूध नहीं पीऊँगा, क्यों भाई क्या बात है अच्छा दूध है शक्कर पड़ी है, बादाम केशर भी है।

वह कहता है अब तक तो मैं तुम्हारे यहाँ दूध पीता रहा किन्तु आज से मुझे एलर्जी हो गयी, अरे भईया! ऐसा क्या हुआ? गर मैं बता दूँगा तो तुम्हारे ग्राहक टूट जायेंगे बस अब मैं दूध नहीं पीऊँगा। वह दूध नहीं पी रहा जबकि पैसे भी दे चुका है इसका क्या कारण है? और अन्य लोगों ने दूध क्यों पी लिया? अन्य लोगों ने दूध इसीलिये पी लिया क्योंकि उन्हें जानकारी नहीं थी कि दूध में छिपकली का बच्चा गिर गया था और हलवाई ने उसे भट्टी में डाल दिया था, और उसे इस बात की जानकारी है तो वह कहता है कि मैं दूध नहीं पी सकता अब यह दूध जहर हो गया है, इसे पीकर मैं अस्वस्थ हो जाऊँगा, ये मुझे पैसे वापस भी न करे तो कोई गम नहीं मैं समझूँगा की गुम गये होंगे किन्तु मैं बुद्धिपूर्वक कोई बीमारी मोल नहीं ले सकता, मैं बुद्धिपूर्वक मौत को नहीं खरीद सकता।

ऐसे ही जिस व्यक्ति को विषयों का स्वरूप समझ में आ गया है, जिस व्यक्ति को कषायों का स्वभाव समझ में आ गया है, जिस व्यक्ति ने मिथ्यात्व के सही स्वरूप को जान लिया है, ऐसा व्यक्ति किसी भी प्रकार से मिथ्यात्व की अविनाभावी कषायों से अनुस्यूत विषयों की प्रवृत्ति नहीं कर सकता, और जो कर रहा है तो यही समझो अभी उसके पास ज्ञान नहीं है। ज्ञान आत्मा का स्वभाव है, मात्र शब्दों का ढेर नहीं है। शब्दों का ढेर लगाना बड़ा सरल है, ग्रंथों को कंठस्थ करके शब्दों का ढेर लगा दिया जाता है। आत्मा में विद्यमान हमारा स्वभाव, हमारा गुण, हमारा अविनाभावी उपयोग वह ज्ञान है जो शब्दों के ढेर से प्रकट नहीं होता, वह ज्ञान साधना से प्रकट होता है। शब्दों का ढेर लगाने से यदि कोई ज्ञानी बन जाये तो एक अभव्य भी ज्ञानी बन सकता है किन्तु ऐसा नहीं, ज्ञान तो संयम साधना से रत्नत्रय से प्रकट होता है। आज तक किसी व्यक्ति को पढ़-पढ़कर केवलज्ञान हुआ हो तो बता देना? आज तक किसी व्यक्ति को स्वाध्याय करते-करते मनःपर्यय ज्ञान हुआ हो तो बता देना, आज तक स्वाध्याय करते-करते किसी को अवधिज्ञान हुआ हो तो बता देना।

ज्ञान के फल

महानुभाव! ये सब ज्ञान क्षयोपशम भाव है और क्षयोपशम बढ़ाने के लिये साधना आवश्यक है। ज्ञान आत्मा में आना चाहिये, शब्दों के ज्ञान से अपने आप को संतुष्ट कर लेते हैं, सोचते हैं कि हम ज्ञानी हो गये हैं और पुनः अपनी बुराईयों को ढ़ाकने के लिये हमें बहुत बड़ा पर्दा मिल जाता है। आचार्य कहते हैं-''ज्ञानी पुरुष कौन है?'' आ. कुन्दकुन्द स्वामी जी ने समयसार में लिखा है-''जो तीन गुप्ति का धारक है, निश्चयरत्नत्रय से युक्त है वह ज्ञानी है।

छहढाला में भी आप पढ़ते हैं-

''कोटि जन्म तप तपें ज्ञान बिन कर्म झरे जे
ज्ञानी के छिन माँहि त्रि गुप्ति ते सहज टरें ते''

तो ज्ञानी कौन? शब्दों के पाठी को आचार्यों ने ज्ञानी नहीं कहा। आचार्यों ने तो तीर्थंकरों को जो जन्म से तीन ज्ञान लेकर के आते हैं, उन्हें भी ज्ञानी नहीं कहा। आचार्य गुणभद्रस्वामी ने उत्तरपुराण में लिखा है-

जब तीर्थंकरों को वैराग्य होता है, तब कहा है कि हाँ इनको अब आत्मज्ञान हो गया है, वैराग्य को स्वीकार कर लिया है। ज्ञान का साक्षात् फल है वैराग्य। ज्ञान का फल है संयम, तप इच्छानिरोध, कषायों का शमन, इन्द्रिय निरोध, पाप की निवृत्ति सम्यक् चारित्र में प्रवृत्ति ये सब ज्ञान के फल हैं। जब फल नहीं तब ज्ञान कैसे मानें? जिस पेड़ पर जब से पौधा उत्पन्न हुआ है तब से पौधा वृद्ध हो गया, मर गया किन्तु उस पर आज तक आम का फल तो देखा नहीं, हमने तो इस पर काँटे देखे थे, इसे हम आम का पेड़ कैसे कहें ये तो बबूल का वृक्ष है। ऐसे ही जिस व्यक्ति के जीवन रूपी वृक्ष पर यदि संयम के फल नहीं लगे हैं, सम्यक्तप के फल नहीं लगे हैं, वैराग्य के फल नहीं लगे हैं, ध्यान के फल नहीं लगे हैं उसे हम कैसे कह दें कि इस व्यक्ति की आत्मा में ज्ञान का अंकुर पैदा हो गया है। फल तो दिखाई देना चाहिये।

तुम कहते हो सूर्य का उदय हो गया, और सूर्य की किरण दिखाई नहीं दे रही, प्रकाश नहीं हुआ तो कैसे कहोगे कि सूर्य का उदय हो गया। तुम कह रहे हो बारिश हो रही है पर आकाश में तो कहीं बादल दिखाई नहीं दे रहे हैं। यदि ये सब दिखाई नहीं दे रहा है

तो तुम्हारा यह कथन मिथ्या है। जीवन में संयम की सुगंधि, सौन्दर्य व सौरभ है तो समझो निःसंदेह तुम्हारा ज्ञान का पुष्प सही है। यदि लालटेन जल रही है उसका प्रकाश बाहर भी आ रहा है तो मतलब जल रही है, तुम कहो कि मैं पुष्पों की टोकरी भरकर लाया हूँ, मेरे सिर पर रखी है, पर उसमें से गंध नहीं आ रही तो काहे का पुष्प। आपको कोई बहुत अच्छा इत्र देता है पर उसमें सुगंधि नहीं आ रही तो काहे का वह इत्र।

अज्ञानी से ज्यादा खतरनाक कुज्ञानी

तो महानुभाव! कहने का आशय ये है कि जो कार्य कर रहे हैं उसका प्रतिफल भी तो आना चाहिये, यदि प्रतिफल ही नहीं आ रहा है तो समझो वह कार्य ही नहीं हो रहा है व्यर्थ का परिश्रम किया जा रहा है। उस परिश्रम का कोई फल नहीं। किसान ने खेत में बीज बोया और उसकी फसल नहीं आयी, जिंदगी भर बीज बोता चला गया तो खेती क्या काम की? वह तो अपना समय बर्बाद कर रहा है ऐसे ही केवल शास्त्रों के शब्द गिनते-गिनते यदि हमारे चित्त में किंचित् भी ज्ञान का प्रकाश नहीं हुआ, हमारे कदम किंचित् भी संयम की ओर नहीं बढ़े और हमारे चित्त मे किंचित् भी यह भाव पैदा नहीं होता कि हम अपनी आत्मा का कल्याण करें तो समझो वह पुरुष ज्ञानी नहीं अज्ञानी से ज्यादा खतरनाक है, उसे कुज्ञानी कहना चाहिये, और कुज्ञानी ज्यादा खतरनाक होता है अज्ञानी की अपेक्षा से।

अज्ञानी को समझाया जा सकता है, अज्ञानी को सही राह दिखाई जा सकती है कुज्ञानी को नहीं। तो महानुभाव! जीवन में ज्ञान का फल तो आना चाहिये, और ज्ञान वहाँ से मिलता है जहाँ पर ज्ञान हो। जैसे जलते दीपक से ही अपना बुझा दीपक जलाया जा सकता है बुझा दीपक कभी भी किसी भी दीपक को नहीं जला सकता। ऐसे

ही जो ज्ञानी है वही सही राह दिखा सकता है। आचार्य महाराज ज्ञानी किसे कह रहे हैं-आत्मा में लीन रहने वाला साधक, जो त्रिगुप्ति के धारक हैं, रत्नत्रय धारक हैं, विषयों से रहित हैं। ज्ञानी का आशय पापों से विरक्त, महाव्रतों से संयुक्त, ज्ञान में लीन रहने वाला, पंच समितियों का पालन करने वाला। ऐसे ज्ञानियों के पास बैठने से नि:संदेह तुम्हारे अंदर से ज्ञान किरण उत्पन्न होने की संभावना प्रकट हो जायेगी और यदि किसी शब्द ज्ञानी के पास बैठोगे तो तुम भी शब्द ज्ञानी तो बन सकते हो किन्तु जीवन में आत्मज्ञानी नहीं बन सकते हो।

माँ की गोदी में बोधि

मैं आपसे एक बात और कहना चाहता हूँ जैसा कि आ. पूज्यपाद स्वामी जी ने लिखा है-अर्हद्भक्ति में-

हे भव्यजीव! यदि तुझे अन्न नहीं मिले तो भूख के कारण मृत्यु भी आ जाये तो मर जाना किन्तु जहर नहीं खाना, यदि तुझे वीतरागी भगवान् नहीं मिलते हैं तो किसी सरागी देव की पूजा नहीं करना, चाहे बिना पूजा के रह जाना, यदि तुझे सच्चे गुरु नहीं मिलते तो किसी झूठे गुरु के पास नहीं जाना चाहे बिना गुरु के रह जाना, यदि तुझे सही जिनवाणी नहीं मिलती तो ऐरी-गेरी माँ को अपनी माँ नहीं बना लेना। यदि तुझे सही जिनवाणी मिले आत्म कल्याण करने वाली तो उसके चरणों में अपना माथा रख देना, उसकी गोदी में शरण प्राप्त कर लेना तेरा कल्याण हो जायेगा। क्योंकि माँ की गोदी से ही बोधि की प्राप्ति होती है।

जिसने माँ की गोदी प्राप्त नहीं की उसे जीवन में कभी बोधि की प्राप्ति नहीं हो पाती। महानुभाव! आवश्यक है जो आ.

पूज्यपाद स्वामी ने कहा कि-भूखे रह जाना विष नहीं खाना, वीतरागी भगवान् को मानना सरागी को नहीं, इसी प्रकार जीवन में कभी उपदेश भी सुनना है तो उसके अधिकारी हैं तीर्थंकर प्रभु, यदि वे नहीं हैं तो उनके अभाव में केवली प्रभु, यदि वे भी नहीं हैं तो गणधर परमेष्ठी, वह भी नहीं हैं तो वादी-प्रतिवादी मुनि वह भी नहीं हैं तो मुनिराज को उपदेश देने का अधिकार है इसके अलावा किसी को उपदेश देने का अधिकार नहीं है। आर्यिका माताओं, क्षुल्लक जी ऐलक जी, ब्रह्मचारी, पंडितों आदि को उपदेश देने का अधिकार नहीं है। किन्तु गुरुओं के आदेश से यदि कोई योग्य व्यक्ति है और वह उपदेश दे रहा है तो वह भी यह नहीं कह सकता मैं ऐसी बात कह रहा हूँ वह केवल शास्त्र बाँच सकता है, केवल शास्त्र पढ़ने का अधिकारी है वह अपनी तरफ से कोई बात नहीं बोल सकता। तुम्हारे जीवन में संयम की प्ररेणा ऐसा व्यक्ति नहीं दे सकता जो स्वयं पाप कार्यों में लिप्त हो वह तो सदैव पाप कार्यों की ही बात करेगा।

श्रावक कौन

महानुभाव! जैसे अग्नि में से शीतलता पैदा नहीं हो सकती, जैसे काँटो में से पुष्प की सुगंध पैदा नहीं हो सकती ऐसे ही अज्ञानी व्यक्ति के उपदेश से तुम्हारा कल्याण कभी नहीं हो सकता। ज्ञानी पुरुष का लक्षण नीतिकारों ने इस प्रकार कहा है-

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा,
यस्तु क्रियावान् स पुरुषः विद्वान्ः।
सुचिंतितं चौषध मातुराणां,
न नाममात्रेण करोत्यरोगं॥

अर्थात् शास्त्रों को पढ़-पढ़ करके तो मूर्ख पैदा होते हैं

ज्ञानी नहीं। कब? जब यदि शास्त्र ही पढ़ते चले जायें आचरण/संयम नहीं आया तो। किन्तु जो शास्त्रों को पढ़कर के जीवन में अंगीकार भी करता है, क्रियायें भी करता है, अपने धर्म का पालन भी करता है तो वह ज्ञानी विद्वान् कहा जा सकता है। भगवान् महावीर स्वामी के शासन में केवल दो ही मार्ग हैं-एक श्रावक धर्म, एक श्रमण धर्म। कोई आकर पूछे-आप श्रावक हैं या श्रमण। तो आप कहेंगे हम श्रमण तो हैं नही श्रमण तो वह कहलाता है जो यथाजात दिगम्बर हो हम तो श्रावक हैं, और आ. कुन्दकुन्द स्वामी जी के शब्दों में श्रावक वह कहलाता है-

दाण पूया मुक्खं सावयधम्मे ण सावया तेण विणा
झाणज्झयणं मुक्खं जइधम्मे तं विणा तहा सो वि॥

श्रावक के दो ही धर्म हैं-दान और पूजा। जो दान और पूजा करता है तब तो श्रावक है यदि नहीं करता तो वह श्रावक भी नहीं है। तो महानुभाव! ज्ञान प्राप्त केवल शास्त्रों के माध्यम से नहीं करना है ज्ञान प्राप्त करना है ज्ञानी के माध्यम से। शास्त्रों में ज्ञान नहीं शास्त्रों में ज्ञान को उत्पन्न करने वाले शब्द हैं। ज्ञान चैतन्यमय है,वह चेतना के माध्यम से तुम्हें प्राप्त होगा, किसी चैतन्यमय गुरु के माध्यम से तुम्हें ज्ञान की बात मिलती है तो वह बात तुम्हारे हृदय तक उतर जाती है। वही ज्ञान वास्तव में तुम्हारे अंतरंग के अज्ञान को हटाने वाला है, वही ज्ञान तुम्हारे ज्ञान के क्षयोपशम को बढ़ाने वाला है, वही ज्ञान तुम्हारे अंदर में ज्योति प्रकट करने वाला है। इसके माध्यम से आप संयम को जान सकेंगे और असंयम का परिहार कर सकेंगे।

सत्यता ये है कि यदि यह आत्मबोध हो जाये कि संसार तो दुःखमय है, संसार-शरीर-भोगों से विरक्त होकर मुझे कल्याण

करना है और कल्याण के लिये जब बढ़ जाओगे तो समझ लेना तुम उसी समय से ज्ञानी बन जाओगे।

तो कह रहे थे यदि कोई रोगी व्यक्ति अच्छी-अच्छी औषधियों का नाम याद करले कि इस रोग में यह औषधि, उस रोग में यह औषधि देना चहिये, ऐसे 100 औषधि पढ़ ले किन्तु एक का भी सेवन नहीं करे तो क्या वह रोगी व्यक्ति निरोगी हो जायेगा।

आत्मा की पूजा

जैसे औषधियों को केवल पढ़ने मात्र से कोई रोगी निरोगी नहीं हो सकता, ऐसे ही शास्त्रों में शब्दों के गिनने से आत्मा ज्ञानी नहीं होती आत्मा का कल्याण नहीं होता। जब वे शास्त्रों के शब्द गुरु के माध्यम से सुनने में आते हैं, जिनराज की वाणी मुनिराज के माध्यम से हमारे कर्ण गोचर होती है तब अंदर ऐसी चोट लगती है कि उसका अज्ञान का अंधकार हटने लगता है

अज्ञान तिमिरांधानां ज्ञानांजन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

गुरु के माध्यम से ही आँखें उन्मीलित होती हैं अज्ञान की गंदगी दूर होती है। तुम्हारी आँखों में, तुम्हारी आत्मा में दिव्य ज्योति पहले से है, कोई भी गुरु अपनी ज्योति तुम्हारी आँखों में नहीं डाल देगा किन्तु हाँ गुरु तुम्हें आँखें खोलने की सलाह दे सकता है, आँख खोलने की विधि बता सकता है किन्तु विधि भी वो ही गुरु बता सकता है जिसकी स्वयं की आँखें खुल गयी हैं। जिसकी स्वयं की आँखें बंद हैं वह क्या तुम्हें खोलने की विधि बतायेगा।

तो महानुभाव! ये संसार अभी आप को सही रूप से दिखाई नहीं देता। जो अभी कह रहे थे-**''लोकोऽयंनाट्यशाला''**

यह लोक नाटकशाला है किंतु ये तुम्हें नाटकशाला जैसा दिखाई देता कहाँ है, तुम्हें सही दिखाई नहीं देता तुम्हें दिखता है मैं पंडित हूँ, गरीब हूँ, मैं अमीर हूँ, मैं श्रोता हूँ इत्यादि तो तुम्हें दिखाई देता है ये बाह्य रूप या शरीर के बाह्य संबंध तुम्हें दिखाई दे रहे हैं अंतरंग की आत्मा तुम्हें दिखाई कहाँ दे रही है। बाहर की इस ड्रेस को, लिबास को पकड़कर बैठ गये हो। व्यक्ति के लिबास को पकड़कर बैठने से व्यक्ति को नहीं पकड़ा जा सकता है और व्यक्ति को पकड़ लो तो लिबास अपने आप पकड़ में आ जायेगा, इसलिये आत्मा को पकड़ो। अभी इस आत्मा के साथ शरीर है तो वह भी पकड़ में आयेगा लेकिन शरीर को पकड़ने से आत्मा पकड़ में नहीं आती, आत्मा कूच कर जाती है मिट्टी पड़ी रह जाती है।

आज तक आप मिट्टी की पूजा करते रहे, आत्मा की पूजा का तो मन में भाव संजोया ही नहीं। हमारी ऐसी प्रवृत्ति है कि मृत मूर्तियों की पूजा करना हमें सरल लगता है, मूर्ति चाहे सोने की हो, चाँदी की हो, पाषाण की हो मूर्तियों के सामने तो सिर झुकाना बहुत आसान लगता है किन्तु जीवंत भगवान् के सामने सिर नहीं झुकता। एक बार भी यदि जीवंत भगवान् के सामने तुम्हारा सिर झुकाना प्रारंभ हो जाये, अंतरंग आत्मा तुम्हारी ओर झुक जाये तो उसी दिन तुम्हारी आत्मा में अंतर्ज्ञान हो जायेगा, बहिरात्मपना दूर हो जायेगा, तुम्हारी आत्मा परमात्मा की दशा को प्राप्त करने में सफल हो जायेगी।

दर्पण में मुख, संसार में सुख कभी नहीं

महानुभाव! बहुत आवश्यक है अंदर की दृष्टि को खोलना, बहुत आवश्यक है इस लोक के स्वरूप को समझना। ये जो तुम देख रहे हो वह है नहीं, जो है वो तुम्हें दिखता नहीं। आप कहेंगे कैसी

बात कर रहे हैं महाराज जी! जो नहीं है उसे हम कैसे देखेंगे और जो है उसे अनदेखा कैसे करेंगे? पर तुम कर रहे हो, जो है उसे देख नहीं पा रहे जो दिख रहा है वह है ही नहीं जैसे-दर्पण में मुख और संसार में सुख है नहीं, दिखता है। जब दर्पण के सामने खड़े होते हो तब तुम्हें तुम्हारा मुख दिखाई देता है अब ये बताओ क्या दर्पण में तुम्हारा मुख है? जैसे दर्पण में मुख नहीं है फिर भी दिखता है ऐसे ही संसार में सुख नहीं है दिखता है।

दर्पण में मुख न कभी था, न कभी होगा, पहले भी दिखता था, आगे भी दिखता रहेगा, ऐसे ही संसार में सुख न पहले कभी था, न कभी आगे हो सकेगा। भूतकाल में लोगों को सुख दिखता था, भविष्य के लोगों को भी दिखेगा आज तुम्हें भी दिखता है किन्तु है नहीं। ये पंखा जो चल रहा है देखने पर लग रहा है कि कोई गोल चक्र है और जो पंखे की तीन पाँखुड़ी हैं वे तो दिख नहीं रहीं, जो गोल चक्र नहीं है वह दिखाई दे रहा है।

ऐसे ही लगता है, यही तो आप लोगों की नासमझी है, यही तो आपकी अल्पज्ञता है कि आप क्या समझ रहे हैं ये आपको कुछ मालूम नहीं कि जो आपको देखना चाहिये उसे आप देख नहीं पाते और जो आप देख रहे हैं उसे आपको देखना नहीं चाहिये। किंतु आप वही देखते हैं जो आपका मोह आपको दिखाना चाहता है। यह दोष आपकी आँखों का नहीं, आपके मन का नहीं ये मोह का दोष है, माया का दोष है, जिसे वैदिक परम्परा में माया कहते हैं, मायाजाल कहते हैं। जैन धर्म में इसे कहते हैं मिथ्यात्व, मोह उसका ही यह प्रभाव है कि इसके कारण आपकी आँखों में पट्टी बँध गयी है, आपके चित्त पर आवरण आ गया है, जिस कारण आप उसे देख नहीं पा रहे।

महानुभाव! प्रयास यही करना है कि एक बार तो कम से कम हमारा वह आवरण दूर हो जाये, एक बार तो हमारी दृष्टि निर्मल हो जाये, एक बार तो हम सही को सही देख लें, जान लें।

विषय-कषाय का जहर

मेरा बस यही कहना है कि एक बार सही को सही जान लो फिर जैसा चाहो वैसा कर लेना क्योंकि मेरा विश्वास है जब तुम एक बार जान लोगे कि ये ही दु:ख है, दु:ख का कारण है तो तुम उसमें जानबूझ कर प्रवेश न करोगे। जैसे जिस कढ़ाई में छिपकली गिर गयी वह व्यक्ति उस दूध को पी नहीं सकता वैसे ही जब व्यक्ति को लगेगा कि ये विषय कषाय तो जहर की तरह से हैं आत्मा का अहित करने में लगे हैं, एक बार इस बात को तुम्हारी आत्मा स्वीकार कर ले, मन नहीं, केवल वचन नहीं तुम समझते हो अपने आप को मैं ये हूँ, ये मेरा पद है किन्तु ये सब बाह्य चीज हैं तुम्हारी तो सिर्फ और सिर्फ आत्मा है। कोई भी तुम्हारा नहीं है। गुणस्थान तुम्हारे नहीं, मार्गणा स्थान, योग, गति, वेद तुम्हारे कुछ भी नहीं हैं तुम तो सिर्फ आत्मा हो, शाश्वत आत्मा, अखण्ड आत्मा जिसका कोई खण्ड नहीं कर सकता। किन्तु तुम्हारी सोच न जाने वहाँ तक क्यों नहीं पहुँच पाती। बाह्य में ही अटक कर रह जाते हो, तुम बाहर ही भटकते रहते हो जिनालय के अंदर आने तक का भाव नहीं बना पाते हो, बाहर के चक्कर लगाते रहते हो और कहते हो मैंने भगवान् के दर्शन कर लिये।

तुम ऐसे ही संसार में बाहर-बाहर भटकते रहते हो और कहते हो मैंने धर्म के स्वरूप को प्राप्त कर लिया। शास्त्रों के माध्यम से केवल बाहर की यात्रा की जा सकती है, शास्त्रों का ज्ञान तुम्हें

आत्मा के द्वार तक ले जा सकता है किन्तु आत्मा में प्रवेश करने के लिये उन शब्दों को भी बाहर छोड़ना पड़ेगा। आँख बंद करके दौड़ना पड़ेगा, आँख खोलकर के आत्मा में प्रवेश नहीं होता। संसार के द्वारों में आँख खोलकर के चला जाता है किन्तु आत्मा के रास्ते पर तो बाहर के नेत्रों को बंद किया जाता है और अंतरंग के नेत्रों को उद्घाटित करके पुनः तभी गति हो सकती है।

लोकोऽयं नाट्यशाला, रचितसुरचना प्रेक्षको विश्वनाथो।
जीवोऽयं नृत्यकारी, विविधतनुधरो नाटकाचार्य कर्म।।
तस्माद् रक्तं च पीतं, हरित सुधवलो कृष्णमेवात्र वर्णं।
धृत्वा स्थूलं च सूक्ष्मं, नटति सुनटवन्नीचकोच्चैः कुलेषु।।

यह संसार नाट्यशाला है। इसकी रचना अकृत्रिम (लोगो अकिट्टिमो खलु)और अद्भुत है, सौन्दर्य युक्त है। विश्वनाथ सर्वज्ञ इसके प्रेक्षक ज्ञाता दृष्टा रूप देखने वाले हैं। जीवात्मा नृत्यकर्ता है। अनेक प्रकार के शरीर धारण कर भूमिकाएँ निभाने वाला कर्म पाप-पुण्य नाटकाचार्य (डायरेक्टर) हैं। इस नाट्यभूमि में अभिनय करने वालों का रंग लाल, पीला, हरा, श्वेत व कृष्ण है। इन वर्णों को स्थूल व सूक्ष्म रूप में नीच और उच्च कुलों में (शरीर) धारण करके (सामान्य या विशेष पात्र बनकर) यह जीव 84 लाख योनियों में अनेक रूप लेकर एक नट के समान नाच रहा है। यह नट बहुत वेश धारण करता है।

याद रखें उद्देश्य को

यह लोक तो नाट्यशाला है, इस नाटक में अटक न जाना। नाटक अपने आप में कह रहा है नाटक-ना अटक किंतु फिर भी व्यक्ति अटक करके रह जाता है। समवशरण में भी नाट्यशाला में

घूमते रहते हैं वही अटक कर रह जाते हैं। किन्तु वह नाटकशाला कहती है इसमें अटक मत, आगे बढ़। जो अटकता नहीं है वह बेखटक अपने स्थान पर पहुँच जाता है यदि कहीं अटक जाता है तो लटक जाता है या अपने रास्ते से भटक जाता है। इसीलिये अटकना भी नहीं है, लटकना भी नहीं है, भटकना भी नहीं है बेखटक पहुँच जाना है। जहाँ पर जाने का उद्देश्य बनाकर तुमने जन्म लिया है तुम उस उद्देश्य को भूलते जा रहे हो, जो व्यक्ति अपने उद्देश्य को भूल जाता है वह कभी भी अपनी मंजिल को प्राप्त नहीं कर पाता, मार्ग के मध्य में ही अपनी मंजिल बनाकर ठहर जाता है इसीलिये अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने की कोशिश करो। यदि आपने कोशिश जारी रखी तो आप अपने उद्देश्य को प्राप्त करके ही रहोगे, यदि व्यक्ति अपनी कोशिश छोड़ देता है तो लक्ष्य उसके हाथ से निकल जाता है।

महानुभाव! बस यही संकेत है कि आप अपने स्वभाव को पहचानो, अपनी आत्मा को पहचानो मेरा आपसे कहने का ये आशय नहीं है कि आप सोचें कि स्वाध्याय न करें, स्वाध्याय भी करना है, ज्ञान प्राप्त करना है। मैं ये भी कहना चाहता हूँ कि शास्त्र पढ़ने का उद्देश्य लेकर शास्त्र पढ़ो तो शास्त्र पढ़ना सफल और सार्थक है, निरुद्देश्य शास्त्र पढ़ने से कोई लाभ नहीं है। कोई व्यक्ति जब अपने घर से निकलकर चलता है तो किसी ने पूछा कहाँ जा रहे हो-वह बोला-मालूम नहीं कहाँ जा रहे हैं-तो ऐसा व्यक्ति मूर्ख हो सकता है, रथ्या पुरुष हो सकता है जो निरुद्देश्य गमन करता है। जिसे कुछ पता ही नहीं कि मैं कहाँ जा रहा हूँ, वह व्यक्ति तो ऐसे ही है जैसे एक व्यक्ति गधे पर सवार होकर कहीं जा रहा था-उससे पूछा भाई कहाँ जा रहे हो-जहाँ ये गधा ले जाये वहाँ जा रहे हैं, मुझे नहीं मालूम।

मन को गधा नहीं घोड़ा बनाओ

ये मन भी हमारा गधा है, गलत धारणा में जी रहा है। मन पर सवार होकर कहाँ जा रहें हैं, पता नहीं ले जाकर कौन सी खाई में पटक देगा, कहीं नरक में पटकेगा, तिर्यंच गति में पटकेगा कहाँ डाल देगा, इस मन का कोई भरोसा नहीं है। इसीलिये इस मन को गधा मत बनाओ, इसे घोड़ा बनाओ और अंतरिक्ष की यात्रा करो, नभ यात्रा करो। आध्यात्मिक यात्रा नभ की यात्रा है नभ में कभी गधे नहीं उड़ते, आकाशगामी कभी गधे नहीं होते आकाशगामी तो घोड़े होते हैं। अतः मन को गधा नहीं इसे तो घोड़ा बनाओ इस पर सवारी कर आध्यात्मिकता के मार्ग पर चलकर मुक्ति की प्राप्ति की जा सकती है।

महानुभाव! ये मन मीठा बदमाश है जो व्यक्ति सामने से शत्रुता दिखाये उससे व्यक्ति सावधान हो सकता है किन्तु जो मित्र बनकर के शत्रुता निभाये उससे सावधान होना बड़ा कठिन है। ये मन मीठा बदमाश है जो इन्द्रियों को लुभाता रहता है, आत्मा को मोहित करता रहता है ये सही दिशा में जाने ही नहीं देता बस चक्कर लगाता रहता है, ऐसी बेड़ी डाल देता है पैरों में जो बेड़ियाँ अदृश्य होती हैं। दृश्यमान बेड़ियों को तोड़कर के तो कोई भी आगे निकल जाये किन्तु अदृश्य बेड़ियों को तोड़ना बड़ा कठिन होता है और मैं समझता हूँ मोह की बेड़ियाँ अदृश्य बेड़ियाँ हैं, इनको हम आज तक समझ नहीं पाये इनको हम तोड़ नहीं पाये।

तो महानुभाव! हमें बस इस लोक को नाट्यशाला समझ के इससे बाहर जाना है। अभी क्षण भर के लिये इस नाटकशाला में आपको कोई भी रोल करने का समय मिल गया चाहे मनुष्य का,

स्त्री का, मित्र का, पुत्र का, पिता का कोई भी रोल कर रहे हैं। ये तुम्हारी शाश्वत अवस्था नहीं है क्षण भर का रोल है 10-20-50 साल का रोल है उसके बाद में तुम्हारी ये ड्रेस उतरवा दी जायेगी, दूसरी ड्रेस मिल जायेगी फिर तुम्हें दूसरा नाटक करना पड़ेगा। इस समय यदि अच्छा रोल कर लोगे तो हो सकता है तुम्हें आगे और अच्छा रोल करने को मिल जाये और सही नहीं किया तो नीचे वाला मिलेगा। नारकी का रोल, तिर्यंच आदि का रोल मिलेगा। और सही किया तो देवगति का रोल मिल सकता है अन्यथा डिमोशन होता चला जायेगा।

अभिनेता नहीं, दर्शक बनें

महानुभाव! ये समझना जरूरी है कि चाहे ये रोल कर रहे हों चाहे वो रोल कर रहे हो, ये रोल है वास्तविकता नहीं। रोल तो क्षणभर के लिये होता है कब तुम्हें stage से नीचे कर दिया जाये पता नहीं। इस नाटक में हम अनंतकाल से अभिनय करते जा रहे हैं अब हमें इस नाटक मण्डली से इस नाटक के मंच से बाहर निकलकर 'दर्शक' बनना है। हम व्यर्थ की कथा पूरी कर रहे हैं कभी ये बने कभी वो बने, ये तो व्यर्थ की मजदूरी कर रहे हैं कुछ नहीं मिल रहा इसमें तो दु:ख ही दु:ख है अशांति है, कलह है, अपमान है, तिरस्कार है, हमें तो अच्छा दर्शक बनना है। जो हमारे अच्छे दर्शक हैं वे बालकनी में बैठे हैं, सिद्धालय में। देख रहे हैं पूरे लोक को, नाटक को कि कौन क्या-क्या नाटक कर रहा है। हमें भी वहाँ पर बैठकर दर्शक बनना है, इस संसार को देखना है। हमें भी अरिहंत बनकर दर्शक बनना है लोक-अलोक दोनों को देखना है। ये हमारी नियति है, प्रकृति है। नाटक करना हमारी प्रकृति या स्वभाव नहीं है।

इस लोक को नाट्यशाला समझकर इसके सही स्वरूप को समझना है और इस पिंजरे से बाहर निकलना है। ये एक तरह की जेल है, कैद है। तुम्हें इसमें ही आनंद आने लगा और तुम इसमें ही मस्त हो गये, जो तुम्हारी सही दशा थी उसे भूल गये। आये थे कहीं और जाने के लिये, कहीं आकर के कुछ और काम करने लगे। ये अल्पज्ञ, अज्ञानी जैसी चेष्टायें आपको शोभा नहीं देती, इसीलिये सबसे पहले इस लोक को लोक समझें, हम अपनी आत्मा को अपना समझें, अपने स्वभाव को स्वभाव, विभाव को विभाव समझें। तभी विभाव से उन्मुक्त होकर स्वभाव को प्राप्त करने के लिये पुरुषार्थशील हो सकते हैं। आप सभी अपने स्वभाव की ओर गतिशील हों, विभाव के शिकंजे से छूटें। विभाव के जाल से मुक्त हों यही मैं आपके लिये मंगल भावना भाता हूँ और आप सभी को बहुत-बहुत आशीर्वाद देता हुआ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।

''स्वकीय हित''

महानुभाव! जीवन रहट की बाल्टी की तरह से है जैसे पानी आता है और बाल्टी खाली होती चली जाती है ऐसे ही श्वाँसों की रहट के माध्यम से बाल्टी में पानी आ रहा है जा रहा है, एक-एक श्वाँस आ रही है जा रही है। हमारा जीवन यूँ ही बीतता चला जा रहा है। हम अभी तक जीवन को समझ रहे हैं कि हम वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं, बाल्य अवस्था से हम देख रहे हैं हम और बड़े हुये, और बड़े हुये किन्तु जब वृद्ध अवस्था आ जाती है तब मृत्यु समीप दिखाई देने लगती है, तब बोध होता है अरे! हम बड़े कहाँ हुये आयु तो घटती ही चली जा रही है।

उम्र तकादे में माँगकर लाये थे जिंदगी के चार क्षण,
दो आरजू में निकल गये दो इंतजार में।

जीवन है कुछ करने के लिए

ये चार क्षण की जिंदगी है, इस चार क्षण की जिंदगी में कुछ ऐसा काम किया जा सकता है जिसके माध्यम से चतुर्गति भ्रमण नष्ट हो जाये, कुछ ऐसा किया जा सकता है जिससे हमारी चारों कषायों का शमन हो जाये। इस चार क्षण की जिंदगी में जीवविपाकी, पुद्गलविपाकी, भवविपाकी और क्षेत्रविपाकी इन चारों प्रकार के कर्मों का समूलनाश कर दिया जाये। करने वालों के लिये ये चार दिन की जिंदगी भी बहुत होती है, और न करने वालों के लिये हजार वर्ष भी बेकार हैं।

महानुभाव! यदि हममें कुछ करने की ललक, कुछ करने की भावना है तो करना ही चाहिये। जो नहीं कर सकता है वह अजीव हो सकता है, पुद्गल हो सकता है। चेतना तो ऐसी है जो

करती है, कर्ता है, भोक्ता है। आ. नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने जीव के अधिकारों में कर्ता और भोक्ता दोनों अधिकार दिये हैं, ऐसा कोई जीव नहीं है जो कर्ता नहीं हो और ऐसा भी कोई जीव नहीं है जो भोक्ता नहीं हो। पुद्गल कुछ नहीं कर सकता उसमें केवल पारिणामिक, औदयिक भाव होते हैं, शेष द्रव्यों में केवल पारिणामिक भाव होता है किन्तु वह परिणमन स्वतः ही चल रहा है, कोई कुछ कर नहीं सकता। जीव द्रव्य के अंदर ऐसी शक्ति है जिसमें पाँच असाधारण भाव होते हैं–1.औदयिक 2.औपशमिक 3.क्षायोपशमिक 4.क्षायिक 5.पारिणामिक ये पाँच भाव होते हैं। यह जीव औपशमिक भाव को भी प्राप्त कर सकता है, क्षायोपशमिक भाव को भी प्राप्त कर सकता है और सम्यक् पुरुषार्थ से क्षायिक भाव को भी प्राप्त कर सकता है।

कल आप देख रहे थे–

देवता विषयासक्ताः, नारका दुःखविह्वला।
ज्ञानहीना च तिर्यंचाः, धर्म योग्या हि मानवाः॥

देव विषयों में आसक्त हैं, नारकी दुःखों से सहित हैं, तिर्यंच ज्ञान से विहीन हैं मात्र मानव ही एक ऐसा प्राणी है जो अपनी आत्मा का कल्याण करने में समर्थ है, धर्म को करने के योग्य है। मनुष्य के अलावा और कौन कर सकता है धर्म। मानव पर्याय के अलावा यदि अन्य पर्याय धारण की तो उनसे क्या लाभ? उन सभी पर्यायों को प्राप्त करके संसार का संवर्धन तो किया जा सकता है किंतु संसार का विच्छेद नहीं किया जा सकता। कर्मों को बढ़ाया तो जा सकता है किन्तु कर्मों के भार को घटाया नहीं जा सकता, दुखों की निष्पत्ति तो की जा सकती है किन्तु सुखों की निष्पत्ति नहीं की जा सकती। मानव पर्याय एक ऐसी पर्याय है जिसे प्राप्त करके दुःखों

का नाश किया जा सकता है, चेतना का विकास किया जा सकता है, आत्मा का आत्मा पर विश्वास किया जा सकता है।

मनुष्य में छिपी अनंत संभावनाएँ

केवल एक मनुष्य पर्याय ही है जो चार गतियों में सर्वश्रेष्ठ पर्याय कहलाती है। 84 लाख योनियों में मनुष्ययोनि सर्वश्रेष्ठ कहलाती है, इसीलिये पंचेन्द्रियों में यह मनुष्य का भव सर्वश्रेष्ठ कहलाता है। पंचेन्द्रिय तो नारकी भी होते हैं, देव भी होते हैं, तिर्यंच भी होते हैं किन्तु मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसे शिक्षा दी जाती है, मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसके लिये विद्यालय खोले गये हैं, कॉलेज खोले गये हैं, शास्त्र लिखे जाते हैं। अन्य देवों को, नारकियों को, तिर्यंचों को इन शास्त्रों की आवश्यकता नहीं। शास्त्रों की गर आवश्यकता है तो मनुष्यों को है, यदि साधन की आवश्यकता है तो मनुष्यों को है अन्य गतियों के जीवों को तो आवश्यकता ही नहीं है।

महानुभाव! क्योंकि मनुष्य में कुछ संभावनायें हैं। दूध में ही मावा बनने की संभावना है, दूध को रबड़ी बनाया जा सकता है, दूध से ही खीर बनायी जाती है, दूध से मट्ठा बनाया जा सकता है उसी से घी निकाला जा सकता है क्योंकि दूध में सब संभावनायें हैं। किन्तु छाछ में तो ऐसी कोई संभावना नहीं है। जिसमें संभावनायें ज्यादा होती हैं उसकी सुरक्षा ज्यादा की जाती है, जिसमें संभावनायें कम होती हैं उसकी सुरक्षा कम की जाती है। जो चीज ज्यादा मूल्यवान् होती है उसकी सुरक्षा ज्यादा की जाती है और अल्पमूल्यवाली वस्तु की सुरक्षा व्यक्ति कम करता है।

यदि आप रास्ते में चल रहे हैं और आपके एक हाथ में पानी का कलश है और दूसरे हाथ में घी का कलश है। उसमें

से आप किसकी सुरक्षा करेंगे? यदि पैर फिसलता है तो पानी वाले कलश को छोड़ देंगे और दोनों हाथों से घी के कलश को पकड़ लेंगे। इसी तरह से आपके पास दो कलश हैं। एक चेतना का कलश है (कर्ता कलश) जब आप मनुष्य भव को धारण करके चल रहे हैं तो चेतना का कलश कहीं बिखर न जाये, टूट न जाये ये आपकी विशेषता होना चाहिये, सावधानी होना चाहिये, जो व्यक्ति चेतना के कलश को फेंक करके तन के कलश को संभालने में लगे हैं, तन के कलश को बनाने, सजाने, सँवारने में, पोषण में लगे हैं निःसंदेह वे अपनी आत्मा को छल रहे हैं। तन को तो खूब सजाया सँवारा और तन को कितना ही सजाओ, ये ध्यान रखना तन को सजाने में सजा ही सजा है, जिसका मन मँजा है उसके जीवन में मजा ही मजा है।

बोझ नहीं बोध हो

मन को माँजकर के चलोगे तो जहाँ भी जाओगे वहाँ तुम्हें आनंद ही आनंद आयेगा, जिसका चित्त निर्मल है, जिसमें कषाय की पंक नहीं, जिसमें विषय वासना की दुर्गंध नहीं, ऐसा निर्मल चित्त लेकर कहीं भी चले जाना, चाहे मंदिर में जाना चाहे संसार में जाना, जिसका चित्त निर्मल है उसके लिये सब जगह आनंद ही आनंद है। जिसका चित्त मलिन है उसे भगवान् के पास बैठकर भी अच्छा नहीं लगता, जिसका चित्त मलिन है उसे गुरुओं के पास बैठकर भी अच्छा नहीं लगता, उसे जिनवाणी के पास भी अच्छा नहीं लगता। जिसका चित्त मलिन है फिर उसे कहीं भी शांति नहीं मिलती, बाहर चाहे कितनी भी शांति हो, वातावरण कितना ही सुहावना हो, Room चाहे A.C. हो किन्तु बाहर की शांति चित्त को शांति नहीं दे सकती।

''जब जीवन स्वयं पहाड़ होता है तो पहाड़ पर चढ़ने की इच्छा नहीं होती''। जब तक जीवन पहाड़ है तब तक व्यक्ति

नीचे पड़ा है दबा जा रहा है उसका जीवन बोझ बन गया है और जब उसके जीवन में बोध हो गया तब वह चढ़ने का प्रयास करता है। बाहर से भी पहाड़ पर चढ़ने का प्रयास करता है और अंतरंग से भी चेतना के पहाड़ पर चढ़ने का प्रयास करता है क्योंकि पहाड़ पर चढ़कर उसे आनंद आता है। जिसकी जिंदगी पहले से ही पहाड़ बनकर बैठी है, जिसकी जिंदगी में पहले से ही बहुत बड़ा बोझ रखा हुआ है, वह जब तक बोझ रहता है तब तक बोध नहीं करता। 'बोझ' और 'बोध' दोनों एक दूसरे के एन्टी हैं एक साथ दोनों नहीं हो सकते। जब आत्मा का बोध हो गया तब तुम्हारे चित्त पर कोई बोझ रह नहीं सकता।

सात सखी या सात बदमाश

महानुभाव! ये विकारी भाव तभी आते हैं जब अंतरंग से हमारे स्वाभाविक गुण नष्ट होने लगते हैं। मार्ग में चलते हुए एक चौराहे पर सात सखियाँ मिली, **पहली** सखी से पूछा-तुम्हारा क्या नाम है? उसने कहा-मेरा नाम **बुद्धि** है। वाह! नाम तो बहुत अच्छा है कहाँ रहती हो? मैं मानव के मस्तिष्क में रहती हूँ। बहुत ठीक। **दूसरी** सखी से पूछा-तुम्हारा नाम क्या है? उसने कहा-मेरा नाम **लज्जा** है-तुम कहाँ रहती हो? वह बोली मैं मानव के नेत्रों में रहती हूँ। **तीसरी** से पूछा तुम्हारा नाम क्या है? बताया मेरा नाम **मिठास** है तुम कहाँ रहती हो? मैं मानव की जुबान पर रहती हूँ। **चौथी** से पूछा-तुम्हारा नाम क्या है?-मेरा नाम है **साहस**, तुम कहाँ रहती हो?-उसने कहा मैं मानव के सीने में रहती हूँ। **पाँचवी** सखी से पूछा-तुम्हारा नाम क्या है? उसने कहा मेरा नाम है-**निष्ठा/आस्था/श्रद्धा**, तुम कहाँ रहती हो?-मैं मानव के दिल में रहती हूँ। **छठी** सखी से पूछा-तुम्हारा नाम क्या है?-वह कहने लगी मेरा नाम

है-**तंदुरुस्ती**, तुम कहाँ रहती हो? मैं मानव के पेट में रहती हूँ। **सातवीं** सखी से पूछा-तुम्हारा नाम क्या है? उसने कहा मेरा नाम है **सरस्वती**-तुम कहाँ रहती हो? मैं मानव के कंठ में रहती हूँ। सातों सखियों से मिलकर बहुत आनंद आया, ऐसा लगा सातों सखी कोई बाहर की नहीं प्रत्येक चैतन्य राजा की सखियाँ हैं जो चैतन्य राजा के साथ रहती हैं। जिस चैतन्य ने अपने राज्य को प्राप्त कर लिया है सातों सखी उस राजा की सेवा में लगी हैं। किंतु जिस चैतन्य राजा ने अपना राज्य प्राप्त नहीं किया है जो रत्न ढूँढने के चक्कर में भिखारी बना निर्जन वन में भटक रहा है उसके पास ये सात सखियाँ भटकती भी नहीं हैं।

जैसे ही बाहर निकले तो पुनः सात आदमी दिखाई दिये। काले कलूटे से, लम्बे-लम्बे से बाल, बड़े-बड़े नाखून, फटे से कपड़े जिन्हें देखकर लग रहा था ये बहुत बड़े बदमाश हैं। उनसे भी पूछ लिया तुम बताओ तुम कौन हो? वे बोले-दिखता नहीं है क्या? अंधे हो क्या? अरे भैया हम तो आपसे केवल इतना पूछ रहे हैं आप कौन हो? आपका नाम क्या है? पहला बोला मेरा नाम है-**क्रोध**, बहुत अच्छा भाई तुम कहाँ रहते हो? बोला मैं व्यक्ति के मस्तिष्क में रहता हूँ। अरे! आदमी के मस्तिष्क में तो बुद्धि रहती थी तुम वहाँ कैसे पहुँच गये, वह बोला जब तक बुद्धि रहती है तब तक मैं वहाँ नहीं पहुँच सकता जैसे ही बुद्धि बाहर जाती है मैं जाकर के वहाँ अपनी सत्ता जमा लेता हूँ फिर मेरा राज्य होता है। जब तक बुद्धि रहती है तब तक वह मुझे राज्य नहीं करने देती मुझे दबाकर रखती है किंतु जैसे ही वह बाहर निकलकर आती है, मैं अंदर जाकर दरवाजा बंद करके कुण्डी लगाकर बैठ जाता हूँ।

दूसरे व्यक्ति से पूछा-भाई तुम भी अपने बारे में बताओ-वह बोला मेरा नाम है काम, मैं **कामवासना** हूँ। तुम कहाँ रहते हो?-मैं रहता हूँ मानव की आँखों में। अरे! मानव की आँखों में तो लज्जा रहती थी। हाँ जब तक लज्जा रहती है तब तक मैं वहाँ नहीं जाता, लज्जा जैसे ही निकल के बाहर आती है मैं प्रवेश कर जाता हूँ। बड़े गजब की बात है। तीसरे आदमी से पूछा-भाई तुम कौन हो?-मेरा नाम है **'कड़वाहट'** तुम कहाँ रहते हो? मैं मानव की जिह्वा पर रहता हूँ। अरे! जिह्वा पर तो मिठास रहती थी तुम कबसे पहुँच गये? जब मिठास नीचे फिसल जाती है तो मैं अपना अधिकार जमा कर बैठ जाता हूँ, जहाँ मिठास रहती है उसी स्थान पर मैं रहता हूँ किन्तु जब मैं रहता हूँ तब वो नहीं रहती और जब वो रहती है तब मैं नहीं रहता।

अगले व्यक्ति से पूछा-तुम कौन हो?-बोला-मैं मूढ़-**मूर्खता** हूँ। तुम कहाँ रहते हो? मैं मानव के कंठ में रहता हूँ अरे! वहाँ पर तो सरस्वती रहती है। जब सरस्वती रहती है तब तक मैं नहीं आता। मेरी मूर्खता तभी तक चलती है जब तक सरस्वती नहीं पहुँच पाती, जिसके कंठ में सरस्वती का वास है उसके कंठ में मूढ़ता नहीं रहती, उसके अभाव में तो मेरा ही साम्राज्य रहता है। अगले 5वें व्यक्ति से पूछा-बताओ तुम्हारा क्या नाम है?-वह बोला-मेरा नाम है **कमजोर**-तुम कहाँ रहते हो-मैं मानव के सीने में रहता हूँ-अरे वहाँ तो साहस का निवास है हाँ किन्तु कमजोरी भी तो सीने से आती है न। सीने में साहस,शक्ति, धैर्य है लेकिन जब वे वहाँ नहीं रहते तब मैं वहाँ पहुँच जाता हूँ।

अगले व्यक्ति से पूछा-तुम कौन हो?-वह कहता है-मैं **मिथ्यात्व** अच्छा तुम कहाँ रहते हो? मानव के दिल में रहता हूँ। वहाँ

तो श्रद्धा रहती थी। हाँ श्रद्धा रहती है जब तक श्रद्धा सम्यक् होती है, तब तक मैं झाँकता भी नहीं जैसे ही मैं देखता हूँ कि श्रद्धा डगमगाने लगी है उसके पैर लड़खड़ाने लगे हैं, जैसे ही वह नीचे गिरती है मैं उसे धक्का देकर बाहर निकाल देता हूँ और स्वयं पहुँच जाता हूँ। और अब सातवें व्यक्ति से पूछा-तुम भी अपना परिचय दे दो-तुम कौन हो?-वह कहता है मेरा नाम है-**'रोग'** तुम कहाँ रहते हो? मैं मानव के पेट में रहता हूँ। अरे! मानव के पेट में तो तंदुरुस्ती रहती थी। हाँ तंदुरुस्ती जब तक रहती है तब तक मैं नहीं जाता, वह स्वास्थ्य जैसे ही गिरने लगता है मैं वहाँ धीरे-धीरे अपना साम्राज्य जमाने लगता हूँ।

तो महानुभाव! वे सात सखियाँ जो चैतन्य रूपी राजा की सेवा में लगी हैं, ये हमारी ही सखियाँ, दासियाँ, सेविकायें हैं किन्तु जिस व्यक्ति ने इन सात सखियों को अपने चित्त में स्थान नहीं दिया ऐसे व्यक्ति के चित्त में वे सात बदमाश आ जाते हैं। जो इस आत्मा का विनाश कर जाते हैं, गुणों का ह्रास करते हैं और पुनः दोषों का विकास होना शुरू हो जाता है।

प्रज्ज्वलित करें ज्ञान का नंदा दीप

महानुभाव! यदि चेतना का वास्तव में ही विकास करना है, चेतना में वास्तव में ही प्रकाश करना है तब प्रकाश का सिर्फ और सिर्फ एक ही उपाय है और वह है-''दीपक''। दीपक बाह्य जगत् में प्रकाश करता है और ज्ञान का दीपक अंतरंग जगत् में प्रकाश करता है। आ. गुणभद्र स्वामी ने कहा-

ज्ञानभावनया जीवो, लभते हितपरात्मनः।
विनयाचार संपन्नो, विषयेषु पराङ्मुखः॥

ज्ञान के दीप के माध्यम से यह जीव आत्मा के हित को करने में

समर्थ होता है। जब तक जीव के अंदर ज्ञान की भावना नहीं है तब तक आत्मा के हित का प्रारंभ ही नहीं हो सकता। सम्यक् दर्शन भी बहुत दूर की बात है उससे पहले है ज्ञान। सम्यक् चारित्र भी बहुत दूर की चीज है उससे पहले है ज्ञान। आप कहेंगे महाराजश्री-आप कैसी बात कर रहे हैं? सम्यक् दर्शन पहले है सम्यक् ज्ञान बाद में होता है और आप कहते हैं सम्यक्दर्शन बाद की चीज है। हाँ! सम्यक्दर्शन बाद की चीज है, वैराग्य, संयम, तप, ध्यान सब बाद की चीज हैं पहले है ज्ञान। कौन सा ज्ञान 'सामान्य ज्ञान'। बिना ज्ञान के दर्शन नहीं होता सम्यक् दर्शन का आशय होता है-श्रद्धान करना। और श्रद्धान किसका करोगे? किसी को पहले जानोगे तभी तो श्रद्धान करोगे। ये क्या है-'घड़ी' जान ली तुमने इसीलिये मान ली। जब जानोगे नहीं तो मानोगे कैसे; एक बार जानकर विश्वास हो जायेगा। तो पहले जानना होता है फिर मानना। सम्यक्दर्शन के पहले ज्ञान होता है वह ज्ञान सामान्य ज्ञान होता है किंतु उस ज्ञान के बल से ही सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है और सम्यक्त्व होते ही वह सारा का सारा ज्ञान सम्यक् हो जाता है। ऐसा कैसे होता है?

तो ट्रेन जब स्टेशन पर रुकती है या छूटती है तब उसे लाल या हरी झंडी दिखाई जाती है, किंतु हरी झंडी और लाल झंडी हमेशा नहीं दिखाई जाती है। रात्रि में लाल हरी झंडी नहीं दिखाई जाती Lights दिखाई जाती हैं। केवल दिन में ही हरी-लाल झंडी दिखाई जाती है। जब प्राचीन काल में लाइट नहीं होती थी तब रात में ट्रेन के निकलने पर जिस चौकी पर से ट्रेन निकलती थी वहाँ दीपक जलाते थे, ट्रेन के आने पर उसे रास्ता देना है तो दीपक के पास हरा काँच लगा दिया जब निकल गयी तो लाल काँच लगा दिया। ज्योति तो वही है अभी लाल थी, फिर हरी हो गयी पुनः लाल

के बाद हरी हो गयी, ऐसे ही चेतना में ज्ञान तो वही है जो मिथ्या ज्ञान था सम्यक्दर्शन के होते ही सारा ज्ञान सम्यक् हो गया। जब तक सम्यक्दर्शन नहीं होता है तब तक ज्ञान को सम्यक्पना प्राप्त नहीं होता। ज्ञान को सम्यक्पना देने वाला सम्यक्दर्शन ही है। चारित्र को सम्यक्पना देने वाला सम्यक्दर्शन ही है। वैराग्य, तप, ध्यान को सम्यक्पना देने वाला सम्यक्दर्शन ही है, बिना सम्यक्त्व के किसी भी गुण में सम्यक्त्वपना नहीं आता।

महानुभाव! यह जीव अपने आत्मा के हित को तभी जान पाता है जब ज्ञान की भावना, ज्ञान का दीप अंदर से जलता है। दीपक अपनी चेतना में तुमने रख लिये किन्तु जला एक भी नहीं रखा तो हजारों दीपकों से भी क्या लाभ? तुम्हारे महल में करोड़ों दीप भी रखे हैं, करोड़ों बल्ब रखे होने के बावजूद भी यदि light नहीं है तो करोड़ों बल्ब, हैलोजन, ट्यूबलाइट्स सब बेकार और अगर लाइट है तो एक बल्ब भी कामयाब है। एक दीप भी यदि प्रज्ज्वलित है तो वह नन्हा सा मिट्टी का दीपक भी पर्याप्त है कम से कम अंधेरे में पथ तो दे सकता है और ज्ञान का प्रकाश तो केवल पथ ही नहीं देता, पाथेय भी देता है। केवल पथ देने से वह पथिक चल नहीं पायेगा। पथिक को पथ भी चाहिये, पाथेय भी चाहिये और पथ प्रदर्शक भी चाहिये। जब पथ, पाथेय, पथप्रदर्शक मिले तब वह पथिक आगे कदम बढ़ाने का साहस कर पाता है। अकेले पथ से पथिक चल न सकेगा, मंजिल को प्राप्त न कर सकेगा।

चेतना से परिचय

महानुभाव! आवश्यकता है उस ज्ञान प्राप्ति की, आवश्यकता है उस चेतना के पास पहुँचने की, आवश्यकता है अपना परिचय

करने की। जब आप ट्रेन आदि से यात्रा करते हैं तब यदि आपके बाजू में कोई बैठा हो, चाहे भले ही 1/2 घंटे की यात्रा हो फिर भी आप पूछ लेते हैं-भैया-कहाँ से आ रहे हैं? कहाँ जाना है?-आपका मन नहीं मानता आप उससे परिचय कर लेते हो-आपका क्या नाम है, सर्विस करते हो या बिजनिस करते हो? उसे कहीं जाना है, आपको कहीं जाना है, आपको उससे कहीं कुछ न लेना है न देना है। फिर भी आपने उससे परिचय प्राप्त कर लिया, मित्रता हो गयी किन्तु हम जिसके साथ ता-उम्र रहे फिर भी परिचय न पा सके। जिस आत्मा के साथ मेरा मन, मेरा तन, मेरी इन्द्रियाँ रहीं उस आत्मा का, चेतना का परिचय प्राप्त न कर सके।

जो चेतना जन्म से नहीं जन्म के पहले से मेरे साथ है, जो चेतना अनादिकाल से मेरे साथ है, उस चेतना का परिचय मैं आज तक प्राप्त नहीं कर सका। देखो मैं कैसा निरीह बन गया कि संसार का परिचय प्राप्त करता हूँ, सामने वाले का परिचय पूछ रहा हूँ किन्तु आश्चर्य ये होता है कि जिस आत्मा के साथ यह शरीर रह रहा है जो आत्मा खुद मैं स्वयं हूँ उसकी खबर तक नहीं है। प्रातःकाल से ही आप समाचार पत्रों में, टी.वी., रेडियो से समाचार प्राप्त कर यहाँ-वहाँ देश-विदेशों की बातों की जानकारी रखते हो, कहाँ क्या हुआ, क्या हो रहा है सबकी जानकारी है। सबके जन्मदिन, पुण्यतिथि, Wedding Anniversary याद रखते हो किन्तु खुद की जानकारी नहीं है। देखो तो सही कैसा आश्चर्य है सबकी जानकारी प्राप्त करना चाहता है वह मिथ्यादृष्टि इंसान। मिथ्यादृष्टि मानव पर की जानकारी प्राप्त करता रहता है और सम्यक्दृष्टि मानव स्व की जानकारी, आत्मा की जानकारी प्राप्त करना चाहता है। यदि आत्मा की जानकारी कर ली तो और किसी की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक नहीं है।

प्रवचनसार में आचार्य भगवन् कुंदकुंदस्वामी कहते हैं-

जो जाणदि अरिहंत दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादु तस्सलयं॥1/80॥

जो अरिहंत को द्रव्य, गुण और पर्याय रूप से जानता है, वह अपनी आत्मा को जानता है और उसका मोह नष्ट हो जाता है। क्योंकि जो अरिहंत का स्वरूप है, वही स्वभाव दृष्टि से आत्मा का भी यथार्थ स्वरूप है। परमात्मा को जानने वाला आत्मा को और आत्मा को जानने वाला परमात्मा को जानता है।

''अप्पा सो परमप्पा''

आत्मा ही तो परमात्मा है। ये हमारी आत्मा अनादि से कर्मों से सहित है और जो परमात्मा है वह कर्मों से रहित आत्मा है। जिसने अपनी आत्मा को जान लिया, जिसने आत्मा का अतीत जान लिया, आत्मा का वर्तमान जान लिया, आत्मा की दशा जान ली चाहे सभी पर्याय नहीं जानीं एक क्षण के लिये सिर्फ और सिर्फ आत्मा को जान लिया, समझ लो उसने तीन लोक और उसके सभी पदार्थों को जान लिया महानुभाव! इस आत्मा की जानकारी करना बहुत जरूरी है।

बनें आत्म अन्वेषी

प्रारंभ में एक गाथा बोली थी-**'आदहिदं कादव्वं'** पहला कार्य यही है आत्म का हित करना चाहिये। जो काम करना चाहिये उस कार्य को व्यक्ति तब कर सकता है जब न करने योग्य कार्यों का परित्याग कर दे। परंतु हुआ ये कि न करने योग्य कार्य हम करने बैठ गये और जो करना है उसे भूल बैठे। परीक्षा हॉल में बैठे हैं, आपके पास प्रश्नपत्र भी आ गया, आपके पास उत्तर पुस्तिका भी है

किन्तु आप लिख नहीं रहे आप तो कुछ सोच रहे हैं, बात कर रहे हैं तो कोई भी शुभचिंतक आपसे यही कहेगा बेटा-क्या विचार है एक साल की मेहनत पर पानी फेरना चाहते हो। अरे ये मटरगस्ती करने का समय नहीं है, यह हँसी मजाक का समय नहीं है ये 2-3 घंटे का समय तो आपकी परीक्षा का है जो कुछ भी सालभर में सीखा है उसको अब लिखो। वह कहता है मैं बाद में लिख लूँगा अरे! बाद में कब लिखेगा, देखते ही देखते तीसरा घंटा बज जायेगा, Answer sheet छीन ली जायेगी तू देखता रह जायेगा।

अरे! ये ही बात तो आचार्य महाराज कहते हैं-तूने अनादिकाल से क्या सीखा है? कर्मों की मार सहते-सहते आज इस मनुष्य पर्याय को प्राप्त किया है। दु:खों को सहते-सहते आज तू यहाँ पर आ गया। अनंत बार तूने भगवान् के सामने प्रार्थना की कि हे प्रभु! मुझे एक बार मनुष्य बना दो दुबारा लौटकर के इस संसार में नहीं आऊँगा। माँ के गर्भ में रहकर तुमने सौगंध खायी-हे भगवान्। एक बार मुझे मनुष्य बना दो मैं मुनि बनकर के अपनी आत्मा का कल्याण करूँगा, संसार में नहीं डूबूँगा। यहाँ आकर के सब भूल गये।

आये थे हरिभजन को, औटन लगे कपास।

जब जीव गर्भ में नौ महीने तक उल्टा लटका रहता है तब वह संज्ञी पंचेन्द्रिय सब जानता है, समझता है तभी तो अर्जुन ने अभिमन्यु को चक्रव्यूह में प्रवेश की कला सिखा दी थी। वह जानता है, सुनता है, आपकी हर क्रिया को समझता है।

गर्भ में कैसे-कैसे कष्ट भोग कर आया और श्वाँस-श्वाँस में सौगंध खायी थी कि जन्म लेकर 8 वर्ष का होते ही मैं मुनि बन जाऊँगा और यहाँ आकर के सब भूल गया। यहाँ आकर परिग्रह को ओढ़ता जा रहा है, अपना संसार बढ़ाता जा रहा है।

जो मनुष्य कपड़ों से, लिबास से डरता है वह नरक में नहीं जाता। जिसे लिबास अच्छा लगता है वह अंदर में निवास नहीं कर पाता। महानुभाव! आवश्यकता तो इसी बात की है अपने आप को जानना है, पहचानना है। एक कोई साहित्यकार जब तक साहित्य को लिखने में डूबा हुआ है तब तक उसे बाहर की चिंता खबर नहीं। उपन्यासकार उपन्यास लिखने में लगा है, कोई वैज्ञानिक अपनी खोज में लगा है, किसान अपनी खेती में लगा है, व्यापारी व्यापार में लगा है, जब तक अपने कार्य को सिद्ध नहीं कर लेता दूसरे कार्य में मन नहीं लगेगा। वैज्ञानिक खोज करता है, 3-4 दिन तक यूँ ही टिफिन रखा रहता है न भोजन की सुध है न पानी की। ऐसे ही व्यक्ति जब आत्मा की खोज करने लग जायेगा तो बाहर की दुनिया में नहीं भरमायेगा। किन्तु वह खोज करता कहाँ है? जितना धन कमाने के लिये, यश कमाने के लिये, संसार बढ़ाने के लिये, अन्य कार्यों के लिये उपयोग लगाता है, परिश्रम करता है इसका 1% भी यदि कहीं आत्मा की खोज के लिये लगा दे तो संसार में परिभ्रमण ना करना पड़े।

सोओ किन्तु जागने वालों के बीच

आत्मा का हित करना है और आत्मा का हित होता है ज्ञान भावना से। ज्ञान भावना के अलावा और कोई उपाय है ही नहीं और ज्ञान कहाँ मिलेगा? क्या किसी market में, किसी बाग बगीचे में, किसी फैक्ट्री में, किसी विद्वान् के पास, किसी शास्त्र में? ज्ञान कहीं बाहर में नहीं मिलेगा ज्ञान तो हमारी आत्मा का स्वभाव है हमारी आत्मा में मिलेगा। हमारी आत्मा का ज्ञान दीप बुझा हुआ है, किसी ज्ञानी पुरुष की संगति से जिसने अपनी चेतना का दीपक जला लिया है, उस ज्ञानी पुरुष के चरणों में जाकर जब अपना माथा रगड़ोगे तो तुम्हारे चित्त की ज्योति भी प्रज्ज्वलित हो जायेगी। जीवन

भर बुझे दीपकों को बुझे दीपक से रगड़ते रहो तो भी तुम्हारा दीपक जलेगा नहीं।

जीवन में कोई यदि समझदार न मिले तो नासमझों के बीच में ना फँसना, क्योंकि नासमझ व्यक्ति ज्यादा खतरनाक होते हैं। अज्ञान से ज्यादा खतरनाक कुज्ञान होता है, खोटा ज्ञान होता है। यदि आपका जीवन कोरा कागज है, कोई बात नहीं आपकी सिलेट, डायरी, सी.डी. blank है तो वास्तव में उस पर लिखा जा सकता है, सी.डी.-कैसेट को भरा जा सकता है किन्तु जिसमें पहले से ही कुछ भी लिख दिया हो, गालियाँ भर दी हों और अब उसमें भजन भरना है तो फिर कैसे भरोगे? उस सी.डी. को खाली करना पड़ेगा, सिलेट पर लिखे को पहले मिटाना पड़ेगा उसके बाद आप लिख पाओगे, इसीलिये जिसके जीवन का कागज कोरा है, बहुत अच्छा है। गुरु महाराज उस कोरे कागज पर अच्छा-अच्छा साफ-साफ लिख सकते हैं और जिसके जीवन की सिलेट में पहले से ही कुछ लिखा हुआ है उस पर दुबारा से लिखना बड़ा कठिन है।

यदि किसी ने बुरे संस्कारों के ऊपर अच्छे संस्कारों का लेबल लगा लिया तो बीच-बीच में से जहाँ से लीकेज होगा तो बुरे संस्कारों की पस निकलती रहेगी। बुरे संस्कार बदबू मारते रहेंगे, बुरे संस्कार तुम्हें पीछे धकेलते रहेंगे। और मैं कई बार कहता हूँ कि तुम्हारी नींद नहीं टूट रही तो कोई बात नहीं सोओ खूब जी भर के सोओ किन्तु वहाँ मत सोओ जहाँ पर हजार व्यक्ति सो रहे हों, जहाँ हजार व्यक्ति सो रहे हैं वहाँ तुम जागने का प्रयास भी करोगे तो जाग नहीं पाओगे सोते रह जाओगे। जागने वालों के बीच सोओगे तो ज्यादा देर सो ना पाओगे। अंधेरे में सोओगे तो नींद बहुत अच्छी आयेगी, प्रकाश में सोओगे तो ज्यादा सो न पाओगे। प्रकाश को

देखकर तो आँख खोलने का साहस भी कर लें किन्तु अंधकार को देखकर आँखें बार-बार बंद हो जाती हैं, चद्दर ओढ़ लेता है।

महानुभाव! जीवन में सोना ही है तो जागने वालों के पास सोओ, सोना ही है तो प्रकाश में जाकर सोओ, सोना ही है तो वहाँ पर जाकर के सोओ जो जीवंत जीवन जी रहे हैं। जो केवल सपने ही देख रहे हैं उनके पास जाकर बैठ जाओगे तो तुम्हें नींद आ जायेगी। सोने वालों के बीच बैठकर तो नींद आती ही है यदि ड्राइवर के पास बैठकर तुम झपकी लेते रहो तो ड्राइवर तुम्हें सावधान कर देगा, भाई! मैं गाड़ी चला रहा हूँ तुझे देखकर मुझे भी नींद आ जायेगी। तुम्हें सोना है तो पीछे जाओ। इससे सिद्ध होता है जागने वाले के पास बैठकर जीवन में जागरण आता है। प्रज्ज्वलित दीपक के पास रहने से तुम्हारा बुझा दीपक आज नहीं तो कल जल जाएगा। जले हुये दीपक का कहीं भी संस्पर्श पाकर या एक क्षणार्द्ध के लिये भी संगति कर लें तो तुम्हारा भी बुझा दीपक जल जायेगा। किन्तु यह ध्यान रखें कि बुझा दीपक हजारों बुझे दीपक के सामने साष्टांग प्रणाम करे, उन बुझे दीपकों से करोड़ों बार संस्पर्श करे, उसके अनेक भव भी निकल जायेंगे तब भी बुझा हुआ दीपक बुझे हुये दीपक को जला नहीं पायेगा।

ज्ञानदीप से देखें आत्मवैभव को

महानुभाव! इसीलिये ज्ञान की भावना को प्राप्त करने के लिये ज्ञानी पुरुष का सहारा लेना आवश्यक है। अपना दीया जलाकर रखो। जिसके पास दीया होता है वह ठोकर नहीं खाता। जिसके पास दीया नहीं होता उसकी ठोकर खाने की संभावना बहुत होती है। दीया एक वरदान है।

दान धर्म उत्तम महा, दिया करो सब कोय।

घर में धरा न पाइये जो कर दीया न होय॥

दिया–means– दान, दीया–means-दीपक।

यदि तुम्हारे घर मे सम्पत्ति रखी है तो वह नष्ट हो जायेगी और तुमने अपने हाथ से दान में दे दी तो तुम्हारा पीछा न छोड़ेगी भव–भव में तुम्हारा साथ देगी।

दूसरा है **'दीया'** यदि घर में अंधेरा हो और तुम्हारे घर में बहुत सारी वस्तुयें, सम्पत्ति है किंतु दीपक हाथ में नहीं है तो घर में रखी वस्तु भी मिलती नहीं है। तो दीया तो वरदान है। दीया सम्यक्ज्ञान है, दीया आत्मा का ध्यान है जिसके पास है दीया वही वास्तव में महान् है, आज का ना सही कल का भगवान् है।

जिसने दिया, उसने अपना जीवन सही रूप से जीया। जिसने दिया उसने ही अंतरंग आनंद अमृत को पीया। जिसने नहीं दिया उसने तो अपना पूरा जीवन बर्बाद कर लिया। ये जीवन मुक्ति के लिये मिला है। ये जीवन विषय वासना के लिये नहीं मिला है ये जीवन तो देव शास्त्र गुरु की उपासना के लिये मिला है। किन्तु ये सब तभी संभव है जब हाथ में दीया हो। तुम्हारा भी मनुष्य भव है, हमारा भी मनुष्य भव है तुममें और हममें अंतर क्या है? अंतर तो यही है कि हमने तो अपने दीये का उपयोग कर लिया इसीलिये तुम हमारे चरणों में बैठे हो, तुमने अपना दीया नहीं जलाया इसीलिये तुम नीचे बैठे हो।

जिसने हमसे पहले जला लिया वे सिद्धालय में जाकर विराजमान हो गये है। तुम्हें अपना दीया जलाना तो पड़ेगा और वह भी खुद ही जलाना पड़ेगा। जला हुआ दीया तुम्हारे समीप आ सकता है किंतु एक बार तो तुम्हें स्पर्श करना ही पड़ेगा। एक पहल तो तुम्हें

करनी पड़ेगी, एक बार कोशिश तो करो जब न जले तो फिर जला हुआ दीपक हजार बार कोशिश करेगा। तुमने तो अभी एक बार भी कोशिश नहीं की।

एक परिवार में बड़े ही भद्र, पुण्यात्मा, धर्मात्मा लोग थे। बहुत भक्ति करने वाले, बड़ा संस्कारित परिवार था। दादा-दादी से लेकर बच्चों तक सभी का प्रातःकाल मंदिर आना, अभिषेक-पूजन करना, यथाशक्ति व्रत नियम उपवास आदि करना। किन्तु जब दादा-दादी, माता-पिता दिवंगत हो गए, बच्चे बड़े हुये। वे उसी हवेली में बड़े ही प्रतिष्ठा से अभी भी रहते है किन्तु अब उन्हें इतना आनंद नहीं आता। हवेली वही है, सभी साधन वहीं हैं, पर बच्चों को आनंद नहीं आ रहा। दादा का सामान अभी भी इधर-उधर कमरों में पड़ा है। कई बार बच्चों ने सोचा इस बक्से को उठाकर फेंक दें। जिन्हें बच्चे रद्दी कह रहे थे वे डायरी, जिनवाणी उस दादा की थी जब रात में दादा की नींद खुल जाती थी वे उन्हें पढ़ने में मस्त हो जाते थे, दादा के लिये तो वह उनका खजाना था। दूसरे कमरे में लकड़ी से तार आदि बँधे रखे थे, कुछ समझ नहीं आ रहा था क्या था पर बच्चों को कबाड़ा लगा उन्होंने सोचा इसे फेंककर कमरा खाली हो जायेगा, कम से कम किराये पर देंगे तो 100-200 रु. महीना आयेगा।

आज के जमाने के व्यक्ति की यही तो सोच है, पहले व्यक्ति सोचता था ठीक है वो तीन कमरे खाली रहने दो कोई बाहर का व्यक्ति आयेगा तो ठहरा देंगे। पर आज सोचते हैं ये कमरा खाली क्यों पड़ा है? आज बुद्धि संकीर्ण हो गयी है जब खुले में व्यक्ति रहता था तो दिमाग खुला-खुला रहता था वो फला-फूला रहता था, किन्तु आज संकीर्णता में घिर गया बाहर से भी अंतरंग से भी।

तो ऐसी ही संकीर्ण सोच उन बच्चों की रही होगी, उन्हें जो कबाड़ा लग रहा था उसे उठाकर मकान के पीछे फेंक दिया जहाँ कूड़े कचरे का ढेर लगा था। उधर से कोई व्यक्ति निकला उसने देखा-अरे! हाथ से लिखे हुये शास्त्र, उसने उठा लिया और आँखों से आँसू बहाते हुये सीने से लगा लिया। तभी दूसरा व्यक्ति आया उसने देखा अरे! इस ढेर में तो चंदन की लकड़ी है। तीसरा व्यक्ति आया उसने देखा-ये क्या है देखा तो वह तो वीणा थी, उसने उसके तारों को सेट किया वह टूटी नहीं थी। बच्चों को लगता था कि यूँ ही पड़ा है किन्तु बाहर फेंकी तो मस्त फकीर उसे उठाकर ले गया। प्रात:काल वह उसे बजाकर आनंद से घूम रहा था। उसे लग रहा है कि स्वर्ग का वैभव ही मेरे चरणों में दबा है। वह तो अपनी मस्ती में मस्त है उसकी मधुर आवाज को सुनकर हवेली में से सभी लोग बाहर निकलकर आये। और भी बहुत भीड़ वहाँ आ गयी, भीड़ ने उसे सुनकर न्यौछावर कर पैसों का ढेर लगा दिया। उन बच्चों ने देखा अरे! यह तो हमारी ही वीणा है जिसे हमने कल शाम को फेंका था। अरे! इस वीणा की इतनी करामात है कितना चमत्कार है। फकीर बोला अरे भाई! तुम्हारे लिये जो बेकार की चीज थी, वही मेरे आज प्रयोग में आ गयी।

ये बात उस परिवार की नहीं जिसने वह वीणा फेंक दी ये बात मुझे लगता है प्राय: हर परिवार की है हम भी अपनी चेतना की निधि को ऐसे ही लुटा रहे हैं, मिटा रहे हैं, चेतना की एक निधि को पहचान लें। चक्रवर्ती के पास नौ निधि होती हैं, हमारे पास तो 9 लाख, 9 करोड़, 9 अरब, अनंत निधि हैं। उसमें से यदि एक भी निधि का बोध हो जाये, अपने सम्यक्ज्ञान के माध्यम से तो तुम तो

तीन लोक के राजा हो, बने बनाये भगवान् हो, भगवान् आत्मा हो, परमात्मा हो। आश्चर्य तो ये होता है कि तुम तीन लोक के नाथ होकर भी, सर्वश्रेष्ठ राजा होकर भी दर-दर के भिखारी बने हो। तुमसे बड़ा दाता कोई नहीं किंतु आज तुम भिखारी बनकर माँगते फिर रहे हो।

पहचानें आत्मशक्ति को

महानुभाव! अपनी शक्ति को पहचानना है, अपनी आत्मा को पहचानना है। वह ज्ञान के माध्यम से जानी जा सकती है, उस ज्ञान के दीपक को जलाओ। दीपक जब चाहे तब जलाया जा सकता है उसे जलाने का कोई मुहूर्त नहीं होता, जैसे मौत का कोई मुहूर्त नहीं होता ऐसे ही सम्यक्ज्ञान की निष्पत्ति का, सम्यक्दर्शन की प्राप्ति का, वैराग्य की प्राप्ति का और निर्वाण का कोई मुहूर्त नहीं होता, जब आप चाहें तब अपना दीया जला सकते हैं।

एक कुंभकार संध्याकाल में जंगल में अपना गधा खोज रहा था, कहता जा रहा था अंधेरी आने वाली है न जाने कहाँ चला गया है। वह जंगल में अकेला निर्भीक हाथ में 5½ फीट का डंडा लिए देखता जा रहा था, एक शेर गुफा में बैठा यह सब सुन रहा था उसे लगा अंधेरी कोई बहुत बड़ी चीज होती होगी, उसे भी अंध ेरी का डर लग गया और वह गुफा में ही छिपकर बैठा रहा। इधर कुंभकार ने देखा ये मेरा गधा है। उसने शेर का कान पकड़ा और 8-10 डंडे मारे कहा अरे! यहाँ आकर बैठ गया है कामचोर कहीं का-चल उठ और उसका कान पकड़कर ले आया। उसके गले में और दोनों पैरों में रस्सी बाँधकर सब गधों के बीच में रख दिया, रात को पुनः 10-20 डंडे मार दिये। शेर बेचारा चुपचाप पड़ा है। प्रातःकाल हुआ कुंभकार ने देखा मैं तो गधे के धोखे से शेर को उठाकर ले आया अब मैं क्या करूँ?

महीनाभर हो गया वह प्रतिदिन गधों के साथ जंगल में जाता अब वह शेर गधों के बीच रहकर गधा बन गया, क्या करता बँधा हुआ है। एक बँधा शेर और एक खुला शेर दोनों में बहुत अंतर है। एक बँधा शेर चूहे से ज्यादा गया बीता होता है और स्वतंत्र चूहा उस शेर से ज्यादा बलवान्। वह शेर बँधा हुआ है गधों के बीच में रह रहा है वह भूल गया कि मैं शेर हूँ या गधा।

एक दिन पहाड़ की चोटी से एक शेर ने देखा, गधों के बीच में हमारा वंशज, हमारा अंशज, हमारा भाई हमारे कुल का नाम लजा रहा है। वह शेर गया और उससे कहा चल इधर आ जा वह उसे देखकर दुम दबाकर भाग गया, शेर ने सोचा ये ऐसे नहीं आयेगा, उसने अकेले बुलाया कहा देख सब भाग गये तू नहीं भागा न। तू गधा नहीं है, वह बोला मैं गधा हूँ। अरे तू गधा नहीं है वह कहता है कैसे? देख-जैसे ही शेर ने दहाड़ लगायी उसने भी दहाड़ लगायी दहाड़ लगाते ही-सारे बंधन तोड़कर चढ़ गया पहाड़ की चोटी पर, तभी सारे गधे और कुम्हार भाग गया।

महानुभाव! मुझे लगता है तुम भी अंदर से शेर हो, तुम्हें भी एक दहाड़ की आवश्यकता है, पर दहाड़ को सुनकर भी तुम अंदर से क्यों नहीं जाग रहे। आश्चर्य तो इस बात का है तुम तो बने बनाये धर्मात्मा हो, महात्मा हो, परमात्मा हो, तुम्हारी आत्मा में अनंत शक्ति है तुम भी अच्छे साधक परमेष्ठी बन सकते हो, अपनी आत्मा का कल्याण कर सकते हो। न जाने तुम्हारी आँख में कैसा मोह का जाला आ गया है, न जाने कैसी मोह माया ने तुम्हें घेर लिया है कि बाहर के पदार्थ तुम्हें अपने दिखायी देते हैं और अपनी आत्मा को भूलकर बैठे हो। तुम्हारी आत्मा की निधि को लोग लूट रहे हैं,

कर्मरूपी चोर लूट रहे हैं और तुम सो रहे हो। दूसरों की मिट्टी की रक्षा कर रहे हो अपने सोने को नहीं देख रहे, वह मिट्टी जो तुमसे छीन ली जायेगी। अपने रत्नों को गवाँ रहे हो सोचो! तुमसे बड़ा मूर्ख और कौन है?

महानुभाव! एक क्षण भी आँख बंद करके आपने सोचने का प्रयास किया कि मेरी मृत्यु कभी भी हो सकती है। जिसे महाराज आज जीते जी मिट्टी कह रहे हैं दुनिया प्राण निकलने के बाद कहेगी। ये तो पुद्गल है इसे पकड़ कर क्यों बैठे हो, आत्मा तो अलग है। मुझे तो अपने चैतन्य रत्नों की खोज करना है उन्हीं को हासिल करना है।

सिर्फ एक बार मेरे कहने पर अपनी चेतना की निधि को देखने का प्रयास करो। आचार्य अमृतचंद स्वामी जी ने अध्यात्म कलश में कहा है-यदि एक बार तुमने आत्मा को देख लिया। छः महीने के लिये इस शरीर को पड़ोसी मान लिया, तू छः महीने मेरे पास रह मैं तुझे तेरे आत्मा का अनुभव न करा दूँ तो मुझे अमृतचंद स्वामी न कहना।

महानुभाव! आप भी छः माह के लिये अपने शरीर को पड़ोसी मानकर, अगर जिनवाणी के शब्दों को सुनते रहे, केवल कान से नहीं ध्यान से सुनने वालों के लिये एक पंक्ति भी पर्याप्त होती है। एक शब्द भी पर्याप्त होता है नींद तोड़ने के लिये किंतु तब जब वह जागने के लिये तैयार हो जाये, त्यागने के लिए तैयार हो जाये। जो त्यागने के लिये तैयार हो जाता है वह पाने का हकदार है जो तैयार नहीं हो सकता वह पा नहीं सकता। जो जाग नहीं सकता वह भाग नहीं सकता। जो जाग सकता है वही मोक्षमार्ग में भाग सकता है।

तो महानुभाव! जब भी समय मिले, आँख बंद कर सोचना है मैंने जन्म से लेकर अब तक अपनी आत्मा के लिये क्या कमाया है, मेरे पास ऐसी क्या चीज है जिसे मौत भी न छीन पाये, जिसे भाई बंधु न छीन पायें, चोर चोरी न कर पाये। मेरे पास ऐसी क्या चीज है जो भव-भव में मेरा साथ देने वाली है। वह है धर्म का संस्कार, वह है हमारा सातिशय पुण्य, वह है हमारी भावना जिसके माध्यम से तुम अपनी आत्मा को परमात्मा के साँचे में ढालने में समर्थ हो सकोगे।

बस इतना ही संकल्प कर लो कि अपनी आत्मा को एक बार जानना है। यदि कोई बाहर का व्यक्ति होता है, चोर घुस जाये तो पुलिस पकड़ लेती है चाहे वह कहीं भी छिप जाये, ऐसे ही तुम भी अपनी आत्मा को पकड़ो, आत्मा इन्द्रिय रूपी चोरों के साथ चोरी करने लगी है तुम्हारी आत्मा इनके साथ चोर बन गयी है। तुम्हारी आत्मा तो मालिक है फिर चोरों का साथ क्यों देती है। स्वयं राजा है तो फिर दर-दर का भिखारी क्यों बनी है। इस आत्मा को पकड़ो, जानो, समझाओ। तुम्हारी आत्मा को तुम ही समझा सकते हो दूसरे की बात इसको समझ में नहीं आती। तो महानुभाव! आप सभी को आत्मा को जानने का, समझाने का पुरुषार्थ करना है तभी आत्मा का हित संभव हो सकता है।

श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।

''आत्मा की शक्ति अपार है''

महानुभाव! आत्मा की शक्ति अपार है यह सामान्यतः कई बार सुना है, पढ़ा है, सुनाया है किन्तु आत्मा की शक्ति वास्तव में अपार है इसका अनुभव नहीं किया। आत्मा की अपार शक्ति का जब तक अनुभव नहीं किया है तब तक हम उसके बारे में जान नहीं सकते। एक व्यक्ति चाहे वह बहुत बड़ा राजा ही क्यों न हो उसके महल का दरवाजा बंद है बाहर से ताला पड़ा हुआ है उसके पास तन पर सिर्फ दो वस्त्र हैं और भूख से परेशान है भिक्षा माँग रहा है, जैसे वह व्यक्ति भिक्षा माँग रहा है, व्याकुल चित्त है अभी उसे नहीं मालूम कि मैं यहाँ का राजा हूँ, ये महल मेरा है, केवल इसकी चाबियाँ मेरे पास नहीं हैं तब उसके राजा होने से क्या लाभ। देखना ये है कि वर्तमान में उसकी कंडीशन क्या है?

Present condition से उसका मूल्यांकन किया जा सकता है, भूतकाल में तुम कौन थे, भविष्य में तुम क्या बन सकते हो ये छोड़ो। भूत तो भूत हो गया कोई भूतपूर्व विधायक है, कोई भूतपूर्व सांसद है, कोई कुछ है कोई कुछ है। भूतपूर्व तो कुछ भी हो सकता है। भूत तो भूत की तरह से त्यागने के योग्य है और भविष्य में कौन क्या-क्या बन सकता है। एक छोटा बालक है भविष्य में मजिस्ट्रेट बन सकता है, भविष्य में राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री भी बन सकता है और भी किसी ऊँची पोस्ट पर पहुँच सकता है, किन्तु भविष्य में बनेगा, वह वर्तमान में क्या है?

वर्तमान मे जीने वाला बनता है वर्धमान

एक बार अजात-शत्रु कुणिक मगध सम्राट महाराज श्रेणिक का पुत्र अपनी मौसी के घर पहुँचा, अपने मौसेरे भाई वर्धमान

से मिलने के लिये। जब वह मिला तो वर्धमान को देखकर बड़ा प्रभावित हुआ उसने वर्धमान से पूछा-कि मैं समझ नहीं पा रहा हूँ तुम्हारे चित्त में इतनी शांति है, तुम्हारे चेहरे पर इतनी कांति है, इतनी प्रसन्नता की लकीरें दिखाई दे रही हैं, मैं भी तो राजकुमार हूँ, तुम भी राजपुत्र हो पर मेरे अंदर क्षणभर के लिये भी शांति का अनुभव नहीं होता, इसका कारण क्या है? कुमार वर्धमान ने कहा-अग्रज! शांति और कांति का कारण ये है कि मैं भूत को भूत मानकर के छोड़ देता हूँ अपनी पीठ पर बाँध करके नहीं चलता, जो व्यक्ति भूत को अपनी पीठ से बाँधकर के चलता है वह भूत उसे परेशान कर देता है। जिसकी पीठ पर भूत सवार है, मैं ऐसा था, मैंने ऐसा किया, मेरा खानदान ऐसा था, पिताजी दादाजी ऐसे थे जो इन सब बातों को लेकर चलता है वह वर्तमान का आनंद नहीं ले सकता।

मैंने भूत को भूत मान लिया, भूत अर्थात् **'मृत'/'मुर्दा'** इसलिये मैं भूत की कभी सोचता नहीं। गढ़े मुर्दे नहीं उखाड़ता और मैं शेखचिल्ली के सपने भी नहीं देखता भविष्य में क्या होगा, क्या नहीं होगा। भूत की चिन्ता नहीं करता, भविष्य की कल्पना नहीं करता मैं तो वर्तमान के क्षण को पूरी तरह से जीता हूँ बड़े उत्साह के साथ। और ये सत्य है जो भूत को भूत की तरह छोड़ देता है, भविष्य की कल्पना को छोड़ देता है ऐसा व्यक्ति जो वर्तमान में जीता है वह वर्धमान बन जाता है। तो महानुभाव! जानने के लिये आवश्यक है कि हम वर्तमान को जानें।

गते शोको न कर्त्तव्या, भविष्यं नैव चिन्तयेत्।
वर्तमानेन कालेन, प्रवर्तंते विचक्षणा॥

प्राज्ञ पुरुषों को अतीत का शोक नहीं करना चाहिए और भविष्य की चिंता नहीं करनी चाहिए। वर्तमान काल के अनुसार ही अपनी प्रवृत्ति

करनी चाहिए। वर्तमान ही वर्धमान है। भूत में तुम्हारे खेत में क्या हुआ इसकी बात न सोचो, वर्तमान में तुम्हें किस प्रकार अपने खेत की सिंचाई करनी है, जुताई करनी है, बुवाई करनी है क्या करना है वर्तमान को देखकर के चलें। बीते समय को याद न करें-

अब पछताए होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत

समय चूक गये तो उसका पश्चाताप ज्यादा न करो, वर्तमान को संभाल लो यही सबसे बड़ा पश्चाताप है। और भविष्य के लिये ख्याली पुलाव न पकाओ भविष्य में क्या होगा, क्या नहीं होगा ये कोई नहीं जानता। क्षण भर में कुछ से कुछ भी हो सकता है।

पल से पल में क्या हो जाये, गादी भरे शरीर का।
पता नहीं तकदीर का, कुछ पता नहीं तकदीर का।।

इस शरीर का पल भर में कुछ भी हो सकता है एक राजा रंक बन सकता है और रंक राजा बन सकता है। वह श्रीपाल जैसे कुष्ट रोगी जिनके शरीर से कुष्ट बह रहा था क्षण भर में कंचन जैसी काया हो गयी और ऐसा भी हो सकता है सनत कुमार चक्रवर्ती जो इतने सुंदर थे कि स्वर्ग के देवता सुंदरता को देखने आये और क्षण भर में वे कुष्ट रोगी भी हो गये।

जरूरी है अनुभव

महानुभाव! कोई भरोसा नहीं, कुछ भी विश्वास के योग्य नहीं है। इस संसार में जो तुम्हें मिला है वह विश्वास के योग्य नहीं। यह तन विश्वास के योग्य नहीं, तन उपयोग करने के लिये है इस पर विश्वास नहीं कि ये कब तक ठहरेगा। धन उपयोग करने के लिये है इस पर भी विश्वास नहीं करना कि कब तक ठहरेगा, आपके परिजन, पुरजन, मित्रजन जितने भी हैं इनका सही उपयोग

करना, स्नेह भाव से रहना किंतु विश्वास नहीं करना कि इनका और तुम्हारा संयोग कब तक है कुछ नहीं कह सकते। एक साथ गाड़ी में बैठकर यात्रा की ऐक्सीडेंट हुआ एक का वियोग हो गया, कब क्या हो जाये कुछ नहीं कहा जा सकता।

तो महानुभाव! इस आत्मा की शक्ति अपार है इसे कौन जानता है? इसे वही जानता है जो आत्मा की शक्ति का अनुभव कर रहा है। जिसने आत्मा की शक्ति के बारे में पढ़ा है, सुना है केवल इतना पर्याप्त नहीं है अपितु आत्मा की शक्ति के बारे में अनुभव करना जरूरी है। जिस व्यक्ति ने जीवन में कभी भी मिश्री का स्वाद नहीं लिया वह शब्दों में तो कह सकता है कि मिश्री मीठी होती है किन्तु वास्तव में बता नहीं सकता कि कैसी मीठी होती है। और जिसने स्वाद ले लिया है वह वास्तव में जानता है कि मिश्री कैसी होती है उसका स्वाद अनुभव में आ जायेगा। जैसे ही मिश्री का नाम लिया, नाम कान में पड़ते ही उसे स्मृति आ जायेगी की मिश्री तो मीठी होती है।

महानुभाव! जिसने अनुभव किया है वास्तव में उसका ज्ञान ही सत्य ज्ञान है, बाकी शब्दों का ज्ञान सत्य ज्ञान नहीं होता। अनुभव चाहे किसी का हो तुम्हारा या हमारा, अमीर का या गरीब का, स्त्री का चाहे पुरुष का, मूर्ख का या विद्वान् का किसी का भी अनुभव हो वह अनुभव कभी झूठा नहीं होता, अनुभव की बात सही होती है।

''जाकी पाँव न फटी बिवाई, वो क्या जाने पीर पराई।'' पुस्तकों को पढ़ने से प्यार नही होता, पुस्तकों में प्रेम की बातें लिखी हैं, उससे प्रेम नहीं होता। जब एक माँ का वात्सल्य बेटे को मिलता है तब वह वास्तव में जानता है कि माँ का वात्सल्य ये होता है।

द्वेष क्या होता है? यह पुस्तकों में पढ़ने से नहीं, द्वेष जिसके रग-रग में भरा है, द्वेष की अग्नि जलती रहती है उसे चैन से जीने नहीं देती तब ज्ञान होता है। ऐसे ही संयम क्या होता है? जो स्वयं संयम को धारण करके उसका पालन कर रहा है, उसे ही पता है संयम ये है। आत्मचिंतन क्या होता है? ये केवल शब्दों की बात नहीं है, यह केवल कहने-सुनने की बात नहीं है सत्यता तो ये है कि यह तो अनुभव की चीज है और अनुभव की चीज अनुभव से ही जानी जा सकती है अन्य किसी प्रकार से नहीं।

आपसे कोई कहे-नाक को बंद करके कान से बताओ कि पुष्प की गंध कैसी है? तो क्या आप कान से सूँघकर बता सकते हैं? नहीं बता सकते। ये पाँचों इन्द्रियाँ इन्द्र की तरह से स्वयं में स्वतंत्र रहती हैं, इन्द्र की तरह से प्रवर्तन करती हैं इसीलिये इन्द्रियाँ कहलाती हैं। आत्मा की सूक्ष्मता-असूक्ष्मता का बोध कराने वाली हैं इसीलिये इन्द्रियाँ हैं, कोई इन्द्रिय दूसरी इन्द्रिय का काम नहीं करती। कर्ण इन्द्रिय सुनने का ही कार्य करेगी वह चखने का, सूँघने का, देखने का काम नहीं करेगी।

सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य भगवन् श्री नेमिचंद्रस्वामी गोम्मटसार जीवकांड में 164वीं गाथा में कहते हैं-

अहमिंदा जह देवा, अविसेसं अहमहंति मण्णंता।
ईसंति एक्कमेक्कं, इंदा इव इंदिए जाण॥

जैसे अहमिन्द्र देव अपने-अपने व्यापार में स्वतंत्र होते हैं, उसी तरह इंद्रियाँ भी अपने-अपने विषय को ग्रहण करने में स्वतंत्र हैं। कोई इंद्रिय अपने विषय को ग्रहण करने में दूसरी इंद्रिय की अपेक्षा नहीं करती। अतः इंद्र के समान स्वतंत्र होने से इंद्रिय कहते हैं।

जिसका जो काम है वह उसी के द्वारा हो सकता है, तुम सोचो कोई दूसरी इन्द्रिय किसी दूसरी इन्द्रिय का काम कर ले ऐसा नहीं हो सकता। अनुमान लगाना अलग बात है ऐसे ही जो अनुभव गम्य बात है वह ज्ञान अनुभव से ही होता है शब्दों से नहीं होता है। शब्दों से पढ़ लिया याद आती है याद है क्या चीज, भई जिसको याद आती है उसे अनुभव होता है। दु:ख-शब्द बोलने से दु:ख की अनुभूति नहीं होती। जब कष्ट होता है तब पता चलता है दु:ख। खुशी, आह्लाद, आनंद आदि भाव अनुभव गम्य हैं शब्दों के पढ़ने से, पुस्तकों में पढ़ने से उसके बारे में जाना नहीं जा सकता, जानेंगे तभी जब उसका अनुभव करेंगे।

संयम से होता है आत्मानुभव

तो महानुभाव! आत्मा की शक्ति अपार है-इसमें अनंतगुण हैं, ये ज्ञानदर्शन स्वभावी है, आत्मा अजर-अमर-अविनाशी है, आत्मा सिद्धों जैसी है, मैं ही भगवान् हूँ, हममें और सिद्धों में बस कर्मों का अंतर है ये शब्द सुनने में बहुत अच्छे लगते हैं, पढ़ने में बहुत अच्छे लगते हैं, लिखने में बहुत अच्छे लगते हैं किन्तु इनका उन अनुभूतियों से कोई नियामक संबंध नहीं है। जिसने जीवन में प्रेम की एक भी पुस्तक नहीं पढ़ी, जिसने प्रेम के बारे में कुछ सुना नहीं ऐसा व्यक्ति जब किसी से प्रेम करता है चाहे प्रकृति से करे, चाहे पशु-पक्षियों से करे, चाहे पारिवारिक जनों से करे, चाहे धन-सम्पत्ति से करे, चाहे शरीर से करे, किसी से भी करे जब प्रेम करेगा तभी उसे अनुभव होगा, तभी उसे सही ज्ञान होगा कि प्रेम है क्या चीज। अन्यथा पुस्तकों के पढ़ने से प्रेम की अनुभूति हो जाये तो संसार में कोई किसी से प्रेम न करे। यदि पुस्तकों को पढ़ने से आत्मा की अनुभूति हो जाये तो कोई आत्म ध्यान न करे, पुस्तकों को पढ़ने से ही साधना का फल मिल जाये तो कोई संयम अंगीकार ही न करे।

अनुभव चरित से होत है, शब्द मात्र से नाहिं।
विषय भोग सुख ना मिले कुँवारी गीतन माँहिं॥

आत्मा का अनुभव संयम के माध्यम से होता है, चारित्र के माध्यम से होता है केवल शब्दों के माध्यम से नहीं। अकेले शब्दोच्चारण से अनुभव नहीं होगा, जैसे ''विषय भोग सुख ना मिले कुँवारी गीतन माँहि''। यदि कुँवारी कन्या विषय भोग के गीत गाती रहे तो क्या उससे विषय सुख की पूर्ति हो जायेगी। ऐसे ही कोई व्यक्ति सुबह से शाम तक 1 नहीं 100 बार भी समयसार पढ़ ले। 'समय सार' में अनुभूति थोड़े ही है अनुभूति तो आत्मा में है। समयसार को पढ़कर के कोई मुनि बना या नहीं बना मैं नहीं कह सकता हाँ इतना अवश्य कह सकता हूँ कि मुनि बनकर के समयसार अवश्य आ जाता है। जो वास्तव में सही मुनि बन जाता है उसकी आत्मा में समयसार अवश्य आ जाता है।

ऐसे-ऐसे विद्वान् भी मिले जिन्होंने कहा हमने 108 बार समयसार पढ़ लिया, पूछा क्या तुम्हारा रात्रि भोजन का त्याग है-महाराज जी! वो चलता नहीं है, अरे भाई नरकायु के कारण के साथ में रहकर के समयसार की महिमा को क्यों घटा रहे हो? समयसार को पढ़कर नरक में जाने वाला व्यक्ति यह तो बड़ी ही निंदनीय बात हो गयी। क्या समयसार को पढ़कर भी व्यक्ति नरक जा सकता है हाँ जा सकता है। ज्ञान का अजीर्ण सबसे बड़ा अजीर्ण है, भोजन का अजीर्ण है तो वैद्य जी रेचक औषधि देते हैं ताकि अंदर का कब्ज निकल जाये, सबसे पहले तो अंदर की गंदगी को दूर करना जरूरी होता है। ऐसे ही जब हमारे पास शब्दों की गंदगी हो जाती है, जब तक हम शब्दों की गंदगी साफ न करें तब तक शुद्ध औषधि भी काम नहीं करती। हमारे बर्तन की गंदगी को साफ किये बिना खीर को

नहीं परोसा जा सकता है ऐसे ही हमारे चित्त की भूमि को स्वच्छ करना बहुत जरूरी है। महानुभाव! शब्दों के माध्यम से अनुभूति नहीं आती-अनुभूति के लिये तो मार्ग पर चलना पड़ता है।

लड्डू-लड्डू बोलते जीभ न चखे मिठास,
पानी-पानी बोलते बुझती किसकी प्यास।
जीवन सारा खो दिया ग्रंथ पढ़ंत-पढ़ंत,
तोता-मैना की तरह नाम रटंत-रटंत॥

छोड़नी होगी शब्दों की पोशाक

महानुभाव! शब्दों का भण्डार तो बहुत सारा हो सकता है किन्तु उन भण्डारों में अनुभूति नहीं, यदि अनुभूति आ जाये तो शब्द चैतन्य हो जायेंगे। किन्तु शब्द तो पुद्गल की पर्याय हैं जो पुद्गल की पर्याय है वह चैतन्य कैसे हो सकती है। चेतना और चेतना की पर्याय तो अविनाभावी होते हैं जो किसी अन्य द्रव्य की पर्याय है वह चैतन्य कैसे हो सकती है।

''दव्वविजुत्तं पज्जय, पज्जयविजुत्तं दव्वं णत्थि''।

द्रव्य के बिना पर्याय, पर्याय के बिना द्रव्य नहीं होता। गुण तो द्रव्य के साथ अविनाभावी रूप से रहते हैं। वे कभी मूलरूप से उनसे अलग होते ही नहीं हैं। तो शब्द पुद्गल की पर्याय है, पुद्गल के साथ अविनाभावी रूप से रहने वाले शब्द होते हैं तो वे चेतना की पर्याय कैसे बन सकते हैं, वे शब्द चेतना की अनुभूति कैसे बन सकते हैं तो शब्द अलग हैं चेतना के गुण रूप धर्म अलग हैं। महानुभाव! शब्दों से संबंध तोड़ना पड़ेगा, मन में भ्रांति हो गयी है कि शब्द जितने ज्यादा हो जायेंगे व्यक्ति उतना ज्ञानी हो जायेगा किन्तु हम दूसरी बात मानते हैं जितना ज्यादा शब्द का आडंबर हो

जाता है उतना व्यक्ति के मन में अहंकार बढ़ता चला जाता है और व्यक्ति अपने से दूरी बढ़ाता चला जाता है। ज्यों-ज्यों शब्द बौने पड़ते जाते हैं, आत्मा की अनुभूति के समय शब्द पोशाक को उतार कर रखा जाता है जैसे कोई व्यक्ति पोशाक पहनकर आत्मा का अनुभव नहीं कर सकता, संयम का स्वाद नहीं ले सकता ऐसे ही शब्दों की पोशाक मन पर जब तक पड़ी रहेगी तब तक चेतना-चेतना की अनुभूति नहीं कर सकती।

आवश्यकता है शब्दों को दूर करने की, किन्तु पहले शब्दों पर सवारी करना है फिर छोड़ देना है। ऐसा भी नहीं है कि नदी पार करना है तो नाव को छोड़कर नदी पार कर लो, नहीं नाव में बैठना भी जरूरी है, किन्तु इस किनारे को छोड़ना भी जरूरी है। नाव में बैठना भी जरूरी है उससे उतरना भी जरूरी है। तो शब्द के वाहन में बैठकर वहाँ तक जा सकते हैं किन्तु वहाँ पहुँचकर वाहन छोड़ना पड़ेगा। और जो सवारी का सही सदुपयोग करता है वह तो मंजिल तक पहुँच जाता है किन्तु सवारी का दुरुपयोग करने वाला व्यक्ति मंजिल से दूर भी पहुँच सकता है। ऐसे ही जो शब्द तुम्हें आत्मा के निकट ले जा सकते हैं वे शब्द तुम्हारी आत्मा की दूरी को बढ़ा भी सकते हैं।

ऐसा मत समझ लेना कि शब्दों के माध्यम से मात्र आत्मा का कल्याण ही होता है, शब्दों के माध्यम से आत्मा का अकल्याण भी होता है। भगवान् महावीर स्वामी जब छद्मस्थ अवस्था में थे तब 6 पुरुष अपने आप को तीर्थंकर कहते थे। पूर्णकाश्यप, मक्खली गोसाल, अजितकेश कंबल,प्रकृद्यकात्यायन, संजयवेलट्टिपुत्त, महात्मा बुद्ध। इनके पास भी शब्द ज्ञान का भण्डार था बड़ी तार्किक बुद्धि थी किन्तु जैन दर्शन तर्क से नहीं चलता है जैन दर्शन तो श्रद्धा से,

भाव से जीवंत रहता है। इसमें तर्क का स्थान नहीं है सिद्धांत का स्थान है। यह सिद्धान्त पर टिका हुआ है तर्क पर नहीं।

शब्दज्ञान के बिना भी संभव है मुक्ति

तर्क तो वेश्या की तरह से है आज इसके साथ खड़ी है कल उसके साथ। तर्क को तुम कहीं भी घटा सकते हो, तर्क से किसी बात को सिद्ध भी किया जा सकता है और तर्क से उसी बात का खण्डन भी किया जा सकता है। इसीलिये जैन दर्शन को समझने के लिये तर्क को लेकर नहीं जाना, तर्क को लेकर के जाओगे तो तुम्हें सीधे नरक का रास्ता दिखाई देगा। तर्क के साथ देखोगे तो तुम्हें जैन दर्शन में फर्क दिखाई देगा और तर्क को छोड़ सिद्धान्त को लेकर चलोगे तो तुम्हें अरिहंत, सिद्ध अवस्था ही प्राप्त होगी। जो सिद्धान्त का परिहार करके तर्क को लेकर चलता है तो कल्याण नहीं होता। कल्याण तो श्रद्धा से, सिद्धान्त से, चित्त की सहज सरल युक्ति से होता है। आत्मा का कल्याण करने के लिये कोई नियामक संबंध नहीं है कि शब्दों का बहुत बड़ा ढेर हो तभी आत्मा का कल्याण संभव हो। ऐसे-ऐसे भी साधक हुये जिन्हें 12 साल में भी णमोकार मंत्र याद नहीं हुआ फिर भी केवली बन गये।

शिवभूति नाम के श्रेष्ठी उनके मन में भावना जाग्रत हुयी कि अपने नगर में किसी यथाजात दिगम्बर साधु का चातुर्मास कराया जाये, आस-पास खोज की, एक दिगम्बर मुनिराज अपने संघ सहित विराजमान थे। वह श्रेष्ठी समाज के लोगों को अपने साथ में ले जाकर मुनिराज के पास पहुँचा और उन्हें लेकर आया। मुनिमहाराज ने चातुर्मास किया, चातुर्मास में उन श्रेष्ठी जी ने एक भी दिन आहार नहीं दिया, पूरी व्यवस्थाओं का खर्चा तो सेठ जी की ही तरफ से था किंतु सेठ जी ने एक भी दिन अपने हाथ से आहार नहीं दिया,

क्यों? क्योंकि मुनिमहाराज बिना त्याग कराये आहार नहीं लेते और सेठ जी के जीवन में नियम नहीं थे, न रात्रिभोजन का त्याग था, न अभक्ष्य का त्याग था, और भी कोई व्रत-नियम नहीं थे, अतः मुनिराज ने कहा-तुम कृत नहीं कर सकते मात्र अनुमोदना करो।

मुनिराज का चातुर्मास पूर्ण हो गया और जब वे विहार करने लगे, सभी लोग विहार कराने के लिये गये, सेठ जी भी विहार कराने गये पुनः जब सब श्रावक लौटकर आने लगे सेठ जी साइड में खड़े आँसू पोंछ रहे थे। लोगों ने कहा-ये मगर के आँसू दिखाने से क्या लाभ? दिखता है तुम्हारी कितनी श्रद्धाभक्ति थी? ऐसी श्रद्धा भक्ति होती तो आहार नहीं दे देते, यहाँ पर आँसू दिखा रहे हो। सेठ जी बोले नहीं मेरी श्रद्धा भक्ति तो है पर मैं दिखा नहीं सकता। मेरा मन कर रहा है कि इनके साथ चला जाऊँ पर जा नहीं सकता, मैं प्रतिदिन उनकी सेवा में रहा मैं अब उनके बिना कैसे रहूँगा। लोगों ने कहा तुम जैसे अगर मुनि बन गये तो पूरा संसार ही मुनि बन जायेगा। त्याग तो कुछ कर नहीं सकते और मुनि बनने की बात कर रहे हो। सेठ ने कहा हाँ मैं सच कह रहा हूँ यदि मेरे घर के लोग कहें, मुनि बनने के लिये तो मैं मुनि बन जाऊँगा।

अच्छा ऐसी बात है तो बन जाओ मुनि, देखते हैं कैसे बनते हो मुनि। उसने कहा ठीक है और वे चले गये। घर वालों ने, लोगों ने सोचा 2-4 दिन में लौट आयेंगे। वे गये और जाकर दीक्षा ले ली। दीक्षा लेते ही साधना करने में संलग्न हो गये, ऐसे कर्म का उदय आया कि शिवभूति नाम का जो सेठ था, उसकी जो कुछ भी स्मृति थी वह सब जाती रही। पहले का जो कुछ भी ज्ञान था वह सब स्मृति चली गयी यहाँ तक कि उनके गुरु महाराज ने उन्हें 12 साल तक णमोकार मंत्र याद कराया, आहार के पहले याद करते

आहार करके लौटकर आते वैसे ही भूल जाते। उनके गुरु महाराज भी परेशान, क्या करें? इसके कैसे ज्ञानावरणी कर्म का उदय है कि कुछ याद ही नहीं होता।

एक दिन आहार के लिये गये, णमोकार मंत्र याद करके, चौके तक पहुँच भी न पाये और भूल गये, पुनः लौटकर आये, गुरु महाराज से कहा महाराज मैं तो भूल गया-महाराज ने कहा-यह कल्याण का पात्र है, संवेगी है, वैरागी है, आत्मध्यान में रत है इसके लिये कोई छोटा सा वाक्य दे दिया जाये-उन्होंने कहा-तुम याद रखना **'तुषमासभिन्नं'**-तुष यानि छिलका, मास यानि उड़द की दाल। उड़द की दाल अलग है छिलका अलग है दोनों अलग अलग हैं ऐसे ही मेरा शरीर अलग है आत्मा अलग है बस इतना ध्यान रखना तेरा कल्याण हो जायेगा। पुनः दूसरे दिन आहार को गये तुषमासभिन्नं सूत्र याद करते हुये सामने जंगल से निकले। एक पेड़ पर चिड़िया चहक रही थी उसे देखने लगे, और वह सूत्र भूल गये। अब जैसे ही आगे पहुँचे नगर के निकट सोचने लगे गुरु महाराज ने क्या बताया था-लौटकर यदि गुरु के पास जाता हूँ तो वे कहेंगे-तू इसे भी भूल गया वे असमंजस में पड़ गये, सामने जलाशय के पास देखा एक महिला दाल को धो रही थी। उन्होंने मुद्रा छोड़ी और पूछा माँ आप क्या कर रही हो उस महिला ने कहा महाराज जी हम तुष-मास भिन्न कर रहे हैं। इसका छिलका अलग-दाल अलग कर रहे हैं।

वे बोले बस मिल गया, वे आहार करने नहीं गये और एक पेड़ के नीचे बैठ गये ध्यान लगाया **'तुषमास भिन्नं'** शरीर तुष छिलके के समान है, आत्मा मास-दाल के समान अलग है ऐसे ही मेरी आत्मा अलग है शरीर अलग है ध्यान में बैठे-बैठे आत्मा में लीन होते चले गये।

सभी लोग चर्या से लौटकर आ गए गुरु महाराज अपने चतुर्विध संघ के साथ विराजित थे। उन्होंने देखा कि शिवभूति मुनि आहार के लिये गये थे अभी तक लौटकर नहीं आये, क्या हुआ तब तक आकाश में देवों के विमानों का आगमन देखा और पूछा क्या हुआ? यहाँ आस-पास किसकी वंदना करने जा रहे हैं? उन्होंने कहा-यहाँ निकट में किन्हीं मुनिराज को केवलज्ञान की प्राप्ति हो गयी है। अरे! यहाँ तो आस-पास कोई और संघ था ही नहीं, अरे! यहाँ जो शिवभूति नाम के मुनिराज थे उन्हें केवलज्ञान हो गया है। गुरु महाराज ने कहा-उन्हें केवलज्ञान कैसे हो गया जिन्हें 12 वर्ष में णमोकार मंत्र भी याद नहीं हुआ। इतने में देवों ने आकर गंधकुटी की रचना की, भगवान् की सभा लगी। भगवान् शिवभूति गंधकुटी में विराजमान हैं उनकी दिव्यध्वनि खिर रही है उनके गुरु महाराज हाथ जोड़कर खड़े हैं-हे भगवन्! हमें तत्त्व का उपदेश दीजिये।

आचार्य भगवन् श्री कुंदकुद स्वामी भावपाहुड़ की 53वीं गाथा में कहते हैं

तुसमास घोसंतो, भावविसुद्धो महाणुभावो य।
णामेण य सिवभूई, केवलणाणी फुडं जाओ॥

भावों से विशुद्ध महामुनि शिवभूति तुसमास का बार-बार उच्चारण करते हुए महाप्रभाव के धारक केवलज्ञानी हुए।

महानुभाव! क्या साधना की विशेषता है, क्या कर्मों की विचित्रता है जो गुरु ज्ञान के धारी थे अब वे शिष्य से पूछ रहे हैं-प्रभों! हमें आत्म बोध कैसे हो?

महानुभाव! शब्द ज्ञान का आत्मा के साथ कोई नियामक संबंध नहीं है। उन शिवभूति मुनिराज को कोई बहुत बड़ा शब्द ज्ञान

नहीं था, उन यम मुनिराज को कोई बहुत बड़ा ज्ञान नहीं था तीन पद खण्ड याद किये थे उसी के माध्यम से आत्मा का कल्याण कर लिया। वे तीन पद खण्ड ही उनकी भक्ति थी, प्रतिक्रमण था, वंदना थी, सामायिक, स्वाध्याय सब वही था बस उसे ही पढ़ते थे। और उससे ही अपनी आत्मा के कल्याण को प्राप्त हो गये।

चेतना की निधि, चेतना में ही

तो कहने का आशय यह है शब्द तो मानचित्र की तरह से हैं, संकेत कर सकते हैं जैसे मानचित्र में बनी नदी में स्नान नहीं कर सकते, उस पर बनी रोड पर अपनी गाड़ियाँ नहीं चला सकते, उस पर बने घोड़े पर सवारी करके आप यात्रा नहीं कर सकते। इन मानचित्रों पर बने चिह्न तो मात्र संकेत हैं, यथार्थता तक पहुँचने के लिये यथार्थता ही चाहिये।

शब्द तो संकेत हैं, शब्द यथार्थ नहीं हैं, शब्द हमारी आत्मा का किंचित् भी स्वभाव नहीं हैं, शब्द हमारी आत्मा से विपरीत जाति के हैं। आत्मा चिन्मय है, चेतनमय है, जीव है और शब्द पुद्गल हैं। एक जीव है एक अजीव दोनों एक कैसे हो सकते हैं। दोनों अलग-अलग हैं, विजाति में सजाति के गुणधर्म न मिलेंगे। स्वजाति में स्वजाति के, विजाति में विजाति के गुण धर्म मिलेंगे। फिर भी ऐसा हो सकता है कि सजाति वाला विजाति के पास जाकर रास्ता तो पूछ सकता है, वह भी रास्ता तो बता सकता है किन्तु तुम्हारे साथ यात्रा नहीं कर सकता।

किनारे पर खड़े लोग देख रहे हैं अरे! वह डूब गया। उनके लिये अंदर से सहानुभूति दिखाते तो हैं किन्तु साथ नहीं दे सकते। किसी ने कहा है-**''साहिल के तमाशाही हर डूबने वाले**

का अफसोस तो करते हैं, इमदाद नहीं करते।'' तो यदि तुम शब्दों को पकड़कर डूब जाते हो तो माना कि शब्द कहीं अफसोस कर लेते होंगे किन्तु शब्द अंतर्नाद नहीं करते, वे शब्द तुम्हें केवल रास्ता दिखा सकते हैं तुम्हारे साथ चल नहीं सकते। कौन किसके साथ चला है आज तक संसार में। तू अकेला था, अकेला है, अकेला ही रहेगा बस चल-मंजिलों की ओर और संकल्प ले ले मैं अकेला ही चलूँगा मंजिलों की ओर। जब तक मैं किसी के साथ था तब तक मंजिल नहीं मिली, जैसे ही मैं अकेला हुआ मुझे मेरी मंजिल सामने मिल गयी।

महानुभाव! मंजिल तो मेरे पास है मैं ही मंजिल, मैं ही मार्ग, मैं ही पथिक, मैं ही पाथेय, सब मैं ही हूँ। कोई अलग से है ही नहीं, यदि बाहर से कोई चीज होती तो पकड़ने का प्रयास करता। मैं ही मंजिल, मंजिल मुझे प्राप्त करना है, किसके द्वारा अपने द्वारा और उस रास्ते का पाथेय क्या है-मैं ही पाथेय हूँ, मैं ही मेरा गुरु, मैं ही मेरा शिष्य, मैं ही मेरा मित्र, मैं ही मेरा दुश्मन। मैं ही अपना कर्ता, मैं ही मेरा भोक्ता। जब मुझमें ही सब है तो बाहर से पकड़ने की क्या आवश्यकता? भटकने की क्या आवश्यकता? बाहर भ्रमण करने से न आज तक कुछ मिला है और न आगे मिलेगा। कोई सोचता है शायद मिल जाये, एक व्यक्ति दीवार से कान लगाकर खड़ा था, दूसरा व्यक्ति आया उसने उससे पूछा भाई क्या कर रहे हो, वह भी कान लगाकर बैठ गया। दूसरे व्यक्ति ने कहा-अरे मुझे तो कुछ सुनाई नहीं दे रहा-वह पहला वाला बोला श श श .....शान्त। मैं तीन घंटे से बैठा हूँ जब मुझे सुनाई नहीं दिया तो तुझे तीन मिनट में कैसे सुनाई देगा।

चाहे 3 घंटे हों, 3 दिन हों या 3 माह जब आवाज आ ही नहीं रही तो सुनाई कहाँ से देगा। ऐसे ही इस संसार में चाहे एक चक्कर लगाया, चाहे 100 चक्कर लगाये, चाहे 1000 चक्कर लगाये जब संसार में तुम्हारा स्वभाव है ही नहीं तो कहाँ से मिलेगा? संसार में तुम्हारा गुण धर्म है ही नहीं तो कहाँ से मिलेगा? वह चेतना की निधि तो चेतना में ही मिलेगी बस अन्तर्दृष्टि करके आगे बढ़ना है।

ये काम तो सिर्फ एक योगी का हो सकता है साधक का हो सकता है, ये कार्य किसी भोगी का हो ही नहीं सकता। जीवन में सबसे बड़ी बात ध्यान रखना है कि हमारी चेतना की शक्ति अपार है। आपने यह बात हजारों बार सुनी कि चेतना की शक्ति अपार है किंतु वो शक्ति है कहाँ? यदि आपको दस्त लग जायें 30-40 बार जाओ तो अगले दिन खड़े न हो सकोगे? कहाँ है चेतना की शक्ति, कोई चींटी जिस पर किसी का पैर पड़ जाये वहीं मृत हो जायेगी कहाँ है उसके चेतना की शक्ति? कोई तुम्हें ऊपर से धक्का दे दे हड्डी पसली सब टूट गयीं तो कहाँ गयी चेतना की शक्ति? चेतना की शक्ति तो अपार है न! अनंत है न! पर कहाँ हैं देखूँ तो सही। घर में है तो टॉर्च से ढूंढ लूँ, बाहर है तो सूर्य के प्रकाश में देख लूँ, कहाँ देखूँ, शरीर में है तो क्या ऑपरेशन करा कर देख लूँ?

मुझे तो कहीं भी दिखाई नहीं देती। तो भैया चेतना की शक्ति चेतना में ही है। चेतना में है तो उसका ऑपरेशन कराओगे तब मिलेगी, शरीर का ऑपरेशन कराने से चेतना की शक्ति का बोध नहीं होगा। चेतना का ऑपरेशन कैसे हो? तो चेतना को operate वे कर सकते हैं जिन्होंने स्वयं अपनी आत्मा को operate करके परमात्मा बना लिया है। जो महाचैतन्यशाली अपनी चेतना से साक्षात्कार कर चुके हैं वही तुम्हें चेतना से साक्षात्कार करने का रास्ता बता सकते हैं।

वह रास्ता शब्दातीत है, अक्षरों से अतीत है इसलिये कोई भी व्यक्ति चेतना से साक्षात्कार करने का रास्ता शब्दों में बता नहीं सकता। चेतना का जब अनुभव होगा तब तुम्हारे पास भी शब्द नहीं रहेंगे, न शब्द बोल सकोगे, न शब्द सुन सकोगे। जब तक शब्दों का व्यापार चलता रहेगा, तब तक चेतना का अनुभव नहीं हो सकता। अगर चेतना का अनुभव करना चाहते हो तो शब्दों के व्यापार को छोड़ना पड़ेगा।

रहीमदास ने लिखा–

रहिमन बात अगम्य की, कहन-सुनन की नाहीं।
जानत हैं तब कहत नहीं, कहत सो जानत नाहीं।

मानो या न मानो

जब मुनिराज आत्मा में लीन हैं तब कुछ कह नहीं सकते, और जब कह रहे हैं तब आत्मा में लीन नहीं हैं। केवली भगवान् जब आत्मा में लीन रहते हैं तब दिव्यध्वनि खिरती है किन्तु वो मुख से नहीं सर्वांग से। जो मुख से शब्द बोल रहा है उस समय वह आत्मा मे लीन नहीं है जब आत्मा में लीन है तब मुख से शब्द बोल नहीं सकता, कर्ण से कुछ सुन नहीं सकता, आँखों से देखते हुये कुछ देख नहीं सकता, नासिका से कुछ सूँघ नहीं सकता, शरीर से स्पर्श नहीं कर सकता। एक बार में एक ही काम होता है। जब जानता है तब देख नहीं सकता जब देखता है तब जान नहीं रहा, और जब लीन हो गया तब कुछ नहीं कर रहा बस लीन है तो लीन है। महानुभाव! तो चेतना की शक्ति अपार है। हम यह कैसे मानें? जब दो दिन भोजन नहीं मिलता है तो शरीर ढीला पड़ जाता है, और तुम कहते हो आत्मा की शक्ति अपार है। मैं कैसे मानूँ? भैया है तो सही तुम मानो या न मानो। यदि कोई व्यक्ति कहे कि सूर्य नहीं है तो क्या उसके ना कहने से सूर्य का अस्तित्व कम हो जायेगा।

एक बार उल्लुओं ने सभा बुलाई और सभा में यह विषय छिड़ गया कि सूर्य नाम की तो कोई चीज ही नहीं है। वे सभी सहमति देकर व्याख्या कर रहे थे और सर्वसम्मति से पारित हो गया। अरे! उल्लुओं के पारित करने से सूर्य का अस्तित्व नष्ट हो गया क्या? नहीं हुआ ना, ऐसे ही कोई व्यक्ति जो कहे आत्मा की शक्ति अपार नहीं है तो उसके कहने से क्या आत्मा की शक्ति नष्ट हो जायेगी? नष्ट तो नहीं होगी, यदि है तो महाराज श्री सिद्ध करके बताईये कि आत्मा की शक्ति अपार है हम भी तो जान लें कैसी शक्ति है? भैया तुम्हारी आत्मा-हमारी आत्मा नरकों में गई वहाँ जब घानी में पेली गयी इसके तिल-तिल के बराबर टुकड़े कर दिये गये और जलायी गयी किन्तु फिर भी आत्मा जली नहीं। इसे कोई तोड़ नहीं सकता, काट नहीं सकता। इसे कई बार तोड़ा मरोड़ा पर फिर भी ये आत्मा मरी नहीं। यदि आत्मा की शक्ति अपार नहीं होती तो कब की मर गयी होती। आत्मा आज तक नहीं मरी चाहे निगोद में रही चाहे नरक में रही।

असीमित है आत्मा की शक्ति

आत्मा असंख्यात प्रदेशी है, उसका एक प्रदेश भी आज तक कम नहीं हुआ, इससे सिद्ध होता है कि आत्मा की शक्ति अपार है। यदि आत्मा की शक्ति अपार नहीं होती तो आत्मा कब की नष्ट हो चुकी होती। इस आत्मा ने ऐसे-ऐसे कष्ट सहन करे, यदि सहन नहीं करे होते तो ये अनंतकाल तक रहती कैसे, यदि आत्मा पत्थर की भी होती तो चूर-चूर होकर बालू की तरह उड़ गयी होती, यदि आत्मा कपूर की तरह से होती तो उड़कर के नष्ट हो गयी होती। किन्तु आत्मा का एक भी प्रदेश आज तक कम नहीं हुआ, निगोद की दशा में थी तब भी कम नहीं हुआ, सिद्ध बन गये तब भी कम नहीं हुआ। संसार की किसी भी दशा में आत्मा रह रही है, वहाँ

आत्मा का एक भी प्रदेश न तो कम हुआ है न किसी ने एक भी प्रदेश को बढ़ाया है। ऐसा नहीं कि चींटी बने तो प्रदेश घट गये, हाथी बने तो बढ़ गये, नहीं।

महानुभाव! आत्मा की शक्ति अपार है इसे जानना तो है, जानने के लिये अनुभव ज्ञान की आवश्यकता है। जब व्यक्ति कोई उपवास करता है, जब कोई वृद्ध पुरुष या महिला जो घर से मंदिर तक जाने में असमर्थ होते हैं जब वे सम्मेद शिखर की 27 कि.मी. की वंदना कर लेते हैं, तब उनमें वह जोश वह उत्साह कैसे आ जाता है जब आत्मा में शक्ति नहीं है तो आयी कहाँ से? यदि कुयें में पानी नहीं है तो बाल्टी डालते रहो, पानी कहाँ से आयेगा? यदि है तो पानी आयेगा ही आयेगा। कभी-कभी ऐसा भी होता है कुयें में पानी तो है पर दिख नहीं रहा क्यों? क्योंकि उसमें मिट्टी डली है। मिट्टी अलग करो पानी का स्रोत निकलकर आ जायेगा, ऐसे ही हमारी चेतना पर कर्मों की मिट्टी पड़ी है, हटाते ही शक्ति का स्रोत फूट पड़ेगा।

आत्मा की शक्ति अपार है किन्तु उस पर कर्मों की भरमार है यदि कर्मों की रज हट जाये तो शक्ति भी दिख जाये। जैसे अंगारों पर राख हो जाती है कोई भी चिंगारी/अग्नि दिखाई नहीं देती जैसे ही फूँक मारो राख दूर हो जाती है, शुद्ध अग्नि दिख जाती है वह जला देती है। ऐसे ही तुम्हारी आत्मा की चिंगारी तुम्हारी शक्ति है-

आचार्य महोदय मोक्षपाहुड़ की 53वीं गाथा में कहते हैं-

उग्गतवेणण्णाणी जं कम्मं खवदि भवहि बहुएहिं।
तं णाणी तिहिगुत्तो खवेइ अंतोमुहुत्तेणं॥53॥

अज्ञानी तीव्र तप के द्वारा बहुत भवों में जितने कर्मों का क्षय करता है, उतने कर्मों को ज्ञानी मुनि गुप्ति सहित होकर अन्तर्मुहूर्त में ही क्षय कर देते हैं।

अज्ञानी पुरुष जितने कर्मों का क्षय हजारों करोड़ों भवों में करता है। त्रिगुप्ति धारी मुनिराज उतने कर्मों का क्षय एक उच्छ्वास मात्र में (एक श्वाँस को छोड़ने में जितना समय लगता है) कर देते है। श्वासोच्छ्वास नहीं कहा, लेना-छोड़ना तो समय डबल हो जायेगा। एक श्वाँस मात्र छोड़ना इतने समय में हजारों-करोड़ों भवों के पापों का क्षय किया जा सकता है। अनंतकाल के कर्मों का क्षय अन्तर्मुहूर्त में किया जा सकता है। एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव अल्पकाल में ही सभी कर्मों को क्षय करके मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। इससे सिद्ध होता है कि तेरी चेतना की शक्ति अपार है। यह आत्मा एक समय में 7 राजू दूरी पार कर सकता है। इससे सिद्ध होता है कि वह बस एक समय में सिद्धालय तक पहुँच जाता है।

इस आत्मा की इतनी अपार शक्ति है कि इस आत्मा में तीन लोक और अलोकाकाश झलकते हैं जैसे दर्पण में सामने रखी वस्तु का प्रतिबिम्ब पड़ता है, ऐसे ही शुद्ध निर्मल चेतना में तीन लोक और अलोकाकाश झलकता है। इससे सिद्ध होता है कि आत्मा की शक्ति अपार है, यदि शक्ति अपार नहीं होती तो तीन लोक प्रतिबिम्बित नहीं होते, लोकाकाश प्रतिबिम्बित नहीं होता, यदि शक्ति अपार नहीं होती तो जो सिद्ध भगवान् बन गये हैं वे अनंतकाल तक सिद्धालय में रह नहीं सकते, वे दु:खी हो गये होते, चेतना की शक्ति तो अपार है इसीलिये आज भी वे सुख का वेदन कर रहे हैं।

महानुभाव! आप जानते हैं-अनंत ज्ञान की प्राप्ति कब होती है? ज्ञानावरण कर्म के समग्र क्षय होने पर। अनंतदर्शन की प्राप्ति कब होती है? दर्शनावरणी कर्म के समूल क्षय होने पर। अनंत सुख की प्राप्ति कब होती है? मोहनीय कर्म के सम्पूर्ण क्षय होने पर, अनंत शक्ति की प्राप्ति कब होती है? अंतराय कर्म के सम्पूर्ण क्षय होने पर।

इन चार घातिया कर्मों के क्षय होने पर अनंत चतुष्टय प्राप्त होता है। मोहनीय कर्म के क्षय से अनंत सुख की प्राप्ति होती है और मोहनीय कर्म का क्षय कौन से गुणस्थान में होता है? 11वें में उपशांत होता है 12वें 'क्षीणमोह' गुणस्थान में मोह का संपूर्ण क्षय हो गया। जब मोहनीय कर्म का क्षय हुआ तब 12वें गुणस्थान में उस आत्मा के लिये अनंत सुख की प्राप्ति हुयी अब कौन जाने अनंत सुख है या नहीं, उस अनंत सुख को जानने के लिये अनंत ज्ञान चाहिये बिना अनंत ज्ञान के अनंत सुख को जान नहीं सकते। इसीलिये मोहनीय कर्म का क्षय होने के अनंतर सबसे पहले ज्ञानावरणी कर्म का क्षय, और अनंतज्ञान बिना अनंतदर्शन के होता नहीं इसीलिये दर्शनावरणी कर्म का क्षय होगा। और इन सबके लिये अनंतशक्ति चाहिये। बिना अनंतशक्ति के अनंतज्ञान को धारण नहीं किया जा सकता, बिना शक्ति के अनंतसुख को भोगा नहीं जा सकता, बिना शक्ति के अनंतदर्शन को देख नहीं सकते इसीलिये तुरंत ही अंतराय कर्म का क्षय किया जाता है। तो अनंत शक्ति होने पर ही–'आत्मा की शक्ति अपार है', इसका भी बोध होता है, अनंतशक्ति होने पर ही अनंतदर्शन का बोध होता है अनंतशक्ति होने पर ही अनंतसुख का बोध होता है, अनंतशक्ति होने पर ही अनंतसिद्धि का बोध होता है।

महानुभाव! हमें आत्मा की शक्ति को देखना है, जिसने इसे जान लिया, पहचान लिया ऐसे साक्षात् अरिहंत परमेष्ठी आज हमारे सामने नहीं हैं, उनका समवशरण नहीं है, आज ऋद्धिधारी मुनिमहाराज भी नहीं हैं किन्तु हमारे जो पंचमकाल के दिगम्बरसंत हैं वे ही हमारे साधु हैं, गणधर हैं, तीर्थंकर हैं। जो आत्मा का अनुभव करने वाले हैं, आत्मा के बारे में जानने वाले हैं उनके पास बैठकर ही आत्मा की अनंतशक्ति का बोध होता है इनसे दूरी बनाकर आत्मा की शक्ति का बोध नहीं हो सकता है।

अंतरंग में हो साधुता

जल में रहकर के जल से अस्पृष्ट नहीं रह सकते। आप संसार में रहते हैं संसार की रागद्वेष रूपी कीचड़ आपकी आत्मा से लिपट जाती है। आप उज्ज्वल निर्मल नहीं बन पाते हैं किन्तु संत के सान्निध्य में पहुँचते हैं उनका सान्निध्य पुष्प वाटिका की तरह से है, नदी का किनारा है, कल्पवृक्ष की शीतल छाँव है वहाँ पर जैसे ही पहुँचते हैं उसका प्रभाव तुम्हारी चेतना पर पड़ता है इसीलिये कई बार छोटे-छोटे बालक-बालिका भी आकर कह देते हैं, मुझे भी आप जैसा बनना है। ऐसे भाव उनके पास पहुँचकर ही आते हैं। जब तुम्हें साधु के पास बैठकर अच्छा लग रहा है तो सोचो जब वह साधुता ही तुम्हारे अंदर बैठ जायेगी, संयम तुम्हारे अंदर बैठ जायेगा तब तुम्हें कितना अच्छा लगेगा। वह आनंद शब्दों से परे है, वह तो गूँगे का गुड़ है खाये और मन ही मन मुस्काये। उसके मन के भाव चेहरे पर प्रकट हो रहे हैं क्योंकि चेहरा तो index है।

Face is the Index of the Heart.

हृदय का index है यह चेहरा। चेहरा बता देता है कि तुम्हारे हृदय में कौन सा परिणाम है, दया का है, क्रोध का है, वासना का है, मायाचारी का है, कैसा है। तुम उस चेहरे को पढ़ पाओ या न पढ़ पाओ face reading जिसको आती है वह समझ जाता है। तुम्हारे चेहरे पर बहुत सारी बातें मन की आ जाती हैं। कहना नहीं पड़ता कि उसके चित्त में क्या चल रहा है।

तो महानुभाव! जब तुम्हारे अंतरंग में साधुता आयेगी, जब अंतरंग में आनंद का झरना फूट पड़ेगा, ज्ञान की किरण फूटेगी तब निःसंदेह तुम्हारा चित्त भी प्रसन्न होगा, वर्धमान की तरह से। जो इसके

विपरीत होता है भूत, भविष्य में रत रहता है उसके चेहरे पर झुर्रियाँ झुंझुलाहट दिखाई देती है। जब कोई व्यक्ति अपने दाँये हाथ को दाँयें गाल पर रखकर बैठता है तो समझ लेना वह कोई पश्चाताप कर रहा है, जब कोई व्यक्ति सिर पकड़कर बैठा हो तो समझ लेना वह अपने भाग्य पर अफसोस कर रहा है। कोई बाँये गाल पर बाँया हाथ रखकर बैठा है तो भविष्य की कल्पना बना रहा है। कोई मस्त-मुस्कुरा रहा है, मस्ती में है तो समझ लेना वर्तमान में जी रहा है।

वर्तमान में जीने वाला खिलखिलाता है-वह कहता है मेरा जीवन मेरा है, न किराये का है, न भाड़े का है, न भीख में माँगकर लाया, न वसीयत में मिला है। मेरा जीवन मेरा है जैसा मैं जीना चाहूँगा वैसे जीऊँगा। जिस जीवन को मैं हँसकर जी सकता हूँ उसे रोकर क्यों जीयूँ? जिस जीवन को जागकर जी सकता हूँ तो सोऊँ क्यों? जिस जीवन को वरदान बना सकता हूँ उसे क्यों अभिशाप बनाऊँ? जिस जीवन में पुण्य कमा सकता हूँ फिर क्यों पाप कमाऊँ?

महानुभाव! तो आपका जीवन ऐसा ही पुण्यरूप बने, वरदान बने, महान् बने, महात्मा, परमात्मा, सिद्धात्मा बने। ये सभी संभावनायें आपके अंदर हैं इस बात पर आपको विश्वास हो जाये। जब तक व्यक्ति को अपने वैभव पर विश्वास नहीं होता तब तक लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकता और वैभव पर विश्वास हो तो बहुत दूर की मंजिल भी चींटी पार कर लेती है और विश्वास नहीं हो तो वृहद् गरुड़ पक्षी भी उड़ नहीं सकता। पंखों में दम हो तो आकाश छोटा पड़ जायेगा, पंखों में दम नहीं है तो पक्षी अपने घोसले से बाहर भी निकल के न आ पायेगा। अपने पंखों में कुछ दम-खम रखो, क्या रखो? दमखम, दम-इन्द्रियों का दमन, खम-क्षमा भाव। पंचेन्द्रियों का दमन करो, क्रोध, मान, माया, लोभ का शमन करो तब आती है जीवन में **'दमखम'।**

जो इन्द्रियों का दास है, कषायों के द्वारा पराजित हो गया उसमें तो वास्तव में कोई दम-खम है ही नहीं वह तो कुछ कर ही नहीं सकता।

जो अपने मन को बाँधकर के, इन्द्रियों को बाँधकर के क्षमा भाव को साथ में लेकर के चलता है उसके लिये जीवन में दु:साध्य कुछ भी नहीं है। इसीलिये तुम्हारे पंखों में दमखम हो तो कर दो शंखनाद, मैं अब कर्मों से युद्ध करूँगा, डटकर के करूँगा हटकर के नहीं, डरकर के नहीं। ऐसा युद्ध तो कायर करता है और मैं कायर नहीं, मैं तो वीर पुरुष हूँ। अपने आप को बाँधकर के इन्द्रियों को संकोच करके, लोग कहते हैं पृथ्वी कछुये की पीठ पर टिकी है, कोई कहता है शेषनाग के फण पर टिकी है, कोई कहता है पृथ्वी के नीचे स्वास्तिक बना हुआ है, कोई कहता है ऊँ का चिह्न है कोई कहता है नंदी के सींग पर टिकी है सब अलग-अलग बात कहते हैं।

जो लोग कहते हैं कि कछुये की पीठ पर टिकी है उसका आशय ये है कि यह पृथ्वी उनसे ही सुरक्षित है जो कछुये की तरह से अपनी इन्द्रियों को संकुचित करना जानते हैं, जो अपनी इन्द्रियों को जीत लेते हैं या जीत लिया है। जिनका मन जिन के वश में है उनकी मुट्ठी में यह पृथ्वी है। उनके लिये दु:साध्य कुछ भी नहीं है वह तीन लोक का शासक है, तीन लोक का मालिक है। जिसके पास दमखम है उसके पास सब कुछ है, जिसके पास अंदर की दमखम नहीं उसके पास सब कुछ होते हुये भी कुछ नहीं है। आज बस इतना ही .....।।

श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।

''जिणवयण-मोसहमिणं''

यदि पाप निरोधोऽन्यसम्पदा किं प्रयोजनं।
अथ पापास्रवोस्त्यन्य सम्पदा किं प्रयोजनं।।

महानुभाव! भौतिक सम्पत्ति पुण्य के उदय से प्राप्त होती है पाप के उदय से नष्ट हो जाती है। जिसके जीवन में पुण्य का उदय है उस व्यक्ति को बाहर के इशारे व सहारे की आवश्यकता नहीं है, वह जो कुछ भी करता है पुण्य के उदय में ठीक ही होता चला जाता है। मिट्टी छूने से सोना हो जाती है, शत्रु भी मित्र बन जाता है, जो मारने के लिये आता है वह भी सत्कार में लग जाता है। किंतु जब पाप का उदय आता है तब व्यक्ति फूँक-फूँक के कदम रखता है, दूध को पीता है तो जलता है, छाँछ को पीता है तो जलता है, सोने को पकड़ता है तो भी मिट्टी हो जाती है, घर-बंधु-परिजन जो संरक्षक हैं वे ही विरोधी हो जाते हैं। पाप-इस आत्मा का सबसे बड़ा शत्रु है, पाप से बढ़कर आत्मा का शत्रु कुछ भी नहीं है, चाहे मिथ्यात्व है, अज्ञान है, असाता वेदनीय है, ज्ञानावरण कर्म है, दर्शनावरण कर्म है, नीच गोत्र, अशुभ आयु ये सब पाप प्रकृतियाँ कहलाती हैं, पाप ही सबसे बडा शत्रु है आत्मा का। ये पाप ही दुःख है, पुण्य ही सुख है।

पुण्य की संप्राप्ति पुण्य से

आचार्य अजितसेन सूरि ने क्षत्रचूड़ामणी ग्रंथ में लिखा है-

संसारी प्राणियों के लिये पुण्य ही बंधु है उससे बढ़कर कोई मित्र नहीं, संरक्षक नहीं, कोई उत्तम, शरण नहीं। पुण्य ही सबसे बड़ी शरण है। किसी जिज्ञासु भक्त ने पूछा प्रभो! शास्त्रों में लिखा है

चत्तारि लोगुत्तमा, चत्तारि सरणं पव्वज्जामि और आप कह रहे हैं केवल एक ही शरण है, एक ही उत्तम है वह है **'पुण्य'**। और

शास्त्रों में तो चार शरण, उत्तम कहे। आपकी बात में और शास्त्रों की बात में तो विरोध आता है, यद्यपि आपकी बात सही ही होगी क्योंकि प्रभो! आप आगम से अन्यथा कह नहीं सकते, शास्त्रों की बात तो सही है ही फिर आपकी और शास्त्र की बात में अंतर क्यों?

आचार्य अजितसेन स्वामी ने कहा-तुम ठीक कहते हो शास्त्रों की बात, और मेरी बात भी गलत नहीं है क्योंकि मैं शास्त्रों से हटकर नहीं बोल सकता, जो शास्त्रों में लिखा है-वही मैंने कहा है पुण्य ही सबसे बड़ी शरण है, पुण्य ही लोक में मंगल करने वाला है, पुण्य ही संसार में सबसे उत्तम चीज है। फिर शास्त्रों में चार शरण क्यों कहा? जब तक पुण्य का उदय नहीं होता तब तक अरिहंत, सिद्ध, साधुओं के, जिन धर्म के वचन और सान्निध्य प्राप्त नहीं होता। ये सब पुण्य के उदय से ही मिलता है। पुण्य के उदय से ही पुण्य का अवसर प्राप्त होता है।

आचार्य कल्याणकीर्ति जी ने वीतराग स्तोत्र में लिखा है-

''पश्यन्ति पुण्य रहिता न हि वीतरागं''

जो पुण्य से रहित व्यक्ति होता है वह वीतरागी मुद्रा को स्वप्न में भी नहीं देख सकता। वह वीतरागी मुद्रा के बारे में एक बार भी कल्पना नहीं कर सकता इसीलिये बिना पुण्य के अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म की प्राप्ति उसका ज्ञान, उसका सान्निध्य मिलना, उससे लाभ ले पाना पापी व्यक्ति के बस की बात नहीं है, ये सब पुण्य के माध्यम से ही संभव है। इसीलिये पहली शर्त यदि कोई है तो वह है-'पुण्य'।

सुख का कारण-पुण्यावस्था

पुण्य शरणभूत है, पुण्य ही मंगल करने वाला है। जब सातिशय पुण्य का उदय होता है ऐसा पुण्य जो पुण्य कार्य में संलग्न

करने वाला है, तो ऐसे पुण्य कार्य में संलग्न होते हुये पूर्व में बाँधे हुये पाप कर्मों को भी संक्रमित करके पुण्यरूप किया जा सकता है। पुण्य वह है जो निगोदिया जीव को भी सिद्धालय में पहुँचा सकता है और पाप में वह शक्ति है जो स्वर्ग के देव को भी एकइन्द्रिय अवस्था तक ले जा सकता है। पाप में वह शक्ति है जो पंचेन्द्रिय मनुष्य को भी 7वें नरक तक पहुँचा सकता है। पाप सभी दु:खों को देने में समर्थ है तो पुण्य सभी प्रकार के सुखों को देने में समर्थ है।

आप कहेंगे-महाराज जी ऐसा कैसे हो सकता है? पुण्य तो एक कर्म है और कर्म जीव को सुख कैसे दे सकता है? यदि पुण्य ही जीव को सुख देता है तो सिद्ध परमेष्ठी सभी कर्मों को नष्ट करके सिद्धालय में क्यों गये? तो सुख का कारण कर्म नहीं सुख का कारण तो निष्कर्म अवस्था है। किन्तु हम आप से कह रहे हैं सुख का कारण-पुण्य की अवस्था है। आप कहेंगे-महाराज जी ऐसा कैसे हो सकता है?

ऐसा ऐसे हो सकता है-तीर्थंकर प्रकृति का बंध जिन सोलह कारण भावनाओं को भाकर किया है ऐसे उस जीव के जीवन में तीर्थंकर प्रकृति का उदय 13वें गुणस्थान में आता है उससे पहले तीर्थंकर प्रकृति का उदय नहीं आता, 13वें गुणस्थान की प्राप्ति तब होती है जब चार घातिया कर्म नष्ट हो जाते हैं। चार घातिया कर्मों के नष्ट होने से उस आत्मा में अनंत चतुष्टय अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्य की प्राप्ति हो जाती है। तीर्थंकर प्रकृति पुण्य प्रकृति है उसके उदय होते ही जीवन भर के लिये अनंत सुख की प्राप्ति हो जाती है और जब तीर्थंकर प्रकृति का उदय नहीं है तो वह जीव अनंत सुख को प्राप्त नहीं कर सकता। तीर्थंकर प्रकृति है, घातिया कर्मों को नष्ट किया, पुण्य कर्म का उदय चल रहा है, सातावेदनीय का, शुभ आयु, शुभनाम, शुभ गोत्र इसके रहते हुये वह जीव अनंतसुखी रह सकता है

ऐसा नहीं है कि कर्म की सत्ता होते हुये वह अनंतसुख को प्राप्त न कर सके। कर्म की सत्ता होते हुये भी जीव अनंतसुखी हो सकता है।

पुण्य की प्राप्ति कैसे?

अरिहंत भगवान् के जीवन में कर्मों की सत्ता भी है और अनंतसुख का वेदन भी है, अनंतशक्ति भी है। तो वह अनंत-ज्ञान-दर्शन सुख-वीर्य किसके माध्यम से प्राप्त हो रहा है वह प्राप्त हुआ कर्मों के क्षय से किन्तु उन कर्मों का क्षय किया अपने पुण्य के माध्यम से। बिना पुण्य के रत्नत्रय की प्राप्ति नहीं होती, बिना पुण्य के तप की प्राप्ति नहीं होती, बिना पुण्य के अनंतध्यान नहीं लगाया जा सकता, बिना पुण्य के संसार के पदार्थों से वैराग्य की प्राप्ति नहीं होती। जीवन में किंचित् भी राग यदि विघटित होता है, क्षीण होता है, तो उस समय तुम्हारी पुण्य प्रकृति काम कर रही है इसीलिये आपके जीवन में वैराग्य उपस्थित हुआ है जब तक शाश्वतपुण्य का बंध होता है तब तक राग मंद होता है, द्वेषमंद होता है, कषायमंद होती हैं, मिथ्यात्व मंद होता है तभी यह जीव सातिशय पुण्य का बंध करने में समर्थ होता है।

तो महानुभाव! उस पुण्य का संपादन कैसे किया जाये? इस पुण्य की प्राप्ति जीवन में कैसे हो? कैसे जानें मुक्ति का उपाय? मुक्ति का उपाय जानने से पहले ये समझें कि मोक्ष मार्ग का उपाय क्या है? वह मार्ग मिलता है-पुण्य के माध्यम से। पापी जीव कभी मोक्ष मार्ग में नहीं चल सकता। जो मोक्षमार्ग पर चलता है वह पापी जीव नहीं हो सकता। पापी जीव तो नारकी हो सकता है और नारकी मोक्षमार्गी नहीं हो सकता। पापी जीव तिर्यंच हो सकता है और तिर्यंच मोक्षमार्गी नहीं होते। मोक्षमार्ग साक्षात् प्रारंभ होता है छटवें गुणस्थान से व्यवहार की अपेक्षा से, निश्चय की अपेक्षा से प्रारंभ होता है 7वें गुणस्थान से।

मोक्षमार्गी तो सिर्फ और सिर्फ मनुष्य ही बन सकता है। जिसने उच्चकुल में जन्म लिया है, उत्तम श्रावक की अवस्था को प्राप्त किया है, जिसका शरीर निरोगी है, जिसके अंगोपांग हीनाधिक नहीं हैं और जो व्यक्ति बुद्धि से युक्त है देव, शास्त्र, गुरु के स्वरूप को जानता है, मानता है, स्वीकारता है, संसार-शरीर-भोगों से जो विरक्त हो गया है, जिसके जीवन में तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हो गयी ऐसा वह पुण्यात्मा जीव मोक्ष को और मोक्षमार्ग को प्राप्त करने का अधिकारी है।

पुण्य का उपाय

पुण्य एक बड़ा सा फाटक है जिसको खोलते ही सामने पुष्प वाटिका है, हजारों प्रकार के फूल खिल रहे हैं, महक रहे हैं, बड़ी सुगंधि फैल रही है। उस बहुत बड़े फाटक में दो खिड़कियाँ हैं नीचे की तरफ, कभी फाटक खुलता है कभी खिड़कियाँ खुलती हैं। वे दोनों खिड़कियाँ हैं, एक खिड़की-काय योग, दूसरी है-वचन योग और पूरा फाटक है-मनोयोग का। इन तीनों योगों के माध्यम से पुण्य का आश्रव भी किया जा सकता है और तीनों योगों के माध्यम से जहाँ गंदा नाला है कूड़े कचरे का ढेर लगा हुआ है, जहाँ पर बदबू ही बदबू आ रही है, जहाँ से दुर्गंधि आ रही है ऐसी दोनों खिड़की और बड़ा फाटक तीनों के माध्यम से पापाश्रव भी किया जा सकता है।

उस मनोयोग, काययोग, वचन योग से पुण्य कैसे कमायें किस प्रकार से शुभ का आश्रव किया जाये, दोनों छोटी खिड़कियाँ और एक बड़ा वाला फाटक तीनों लगे हैं ताला पड़ा है। चाबी कहाँ से लायेंगे? चाबी हाथ में आ भी जाये पर जब विधि ही नहीं आती खोलने की तब तक चाबियाँ बेकार हैं। और फिर वह ताला भी ऐसा लगा हुआ है कि जिस ताले में चाबी की आवश्यकता नहीं, वह नंबर वाला ताला है जिसका नंबर आप भूल रहे हैं, उसका कोड

नम्बर/कोड वर्ड याद हो तभी ताला खोला जा सकता है, जिसे कोड वर्ड याद नहीं है ऐसा व्यक्ति पुण्य का ताला कैसे खोले? वह कोड वर्ड याद है दिगम्बर संत को, वह कोड वर्ड लिखा है जिनवाणी में अब कोड वर्ड की चर्चा करते हैं, यदि वह कोड वर्ड आपने अपनी चित्त की डायरी में नोट कर लिया तो जब चाहो तब पुण्य का ताला खोल सकते हो, मन-वचन-काय से पुण्य का आश्रव किया जा सकता है।

जिनवचन ही महौषधि

जिणवयण-मोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूदं
जर-मरण-वाहि-वेयण-खयकरणं सव्वदुक्खाणं॥

जिनेन्द्र भगवान् की वचन रूपी औषधि इन्द्रिय जनित विषय सुखो का विवेचन करने वाली है, अमृत स्वरूप है और जरा, मरण, व्याधि, वेदनादि सब दु:खो का नाश करने वाली है।

वह जिनवाणी चार अनुयोग रूप है, वह द्वादशांगरूप है, वह जिनवाणी जो आत्मा व अनात्मा का भेद बताने वाली है, जो जिनेन्द्र भगवान् की वाणी है जो मोक्ष का साक्षात् हेतु है, जो जन्म, जरा, मृत्यु जैसे महान् रोगों को दूर करने वाली है उस जिनवाणी को ग्रहण किये बिना कोई भी प्राणी अपने ताप को, पाप को, संताप को, अभिशाप को दूर कर ही नहीं सकता। जैसे पानी के गिरते ही शरीर का संताप दूर होता है, ऐसे ही जिनवाणी रूपी अमृत के गिरते ही चेतना में लगा कर्मकालिमा रूप पाप भी धुल जाता है।

जैसे नदी में स्नान करने से शरीर पर लगी कीचड़ धुल जाती है ऐसे ही जिनवाणी के अमृत सागर में जब डुबकियाँ लगाते हैं तो वह चेतना शीतल ही नहीं होती अपितु चेतना पर लगी कर्मों की काई भी धुलने लगती है, धूल मिट्टी-कीचड़ भी धुल जाती है,

इतना ही नहीं आनंद आता है, चित्त प्रसन्न हो जाता है चेतना भी फूलती है। फूलना अर्थात् चेतना में परम आनंद भाव का प्रादुर्भाव हो जाना, चेतना में अनंत दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य का उपवन खिल जाना। चेतना ज्यों-ज्यों उस जिनवाणी के सागर में अवगाहन करती है, त्यों-त्यों परम आह्लाद से युक्त हो जाती है। तो महानुभाव! वह जिनवाणी रस से भरी है, जिनवाणी सुख से भरी है, वह ज्ञान धुरी है, वह चेतना का चेतना से परिचय कराने वाली है, वह ऐसी सखी है जो आत्मा को मुक्ति से मिलाती है।

जिनवाणी रूपी सखी का आलम्बन लिये बिना किसी भी आत्मा ने मुक्ति श्री से संबंध स्थापित नहीं कर पाया। इस मिडिएटर को आत्मा के बीच रखना ही पड़ेगा अन्यथा कोई भी संसारी प्राणी पुण्यात्मा नहीं बन सकेगा। तो वह जिनवाणी का ज्ञान जिसके पास होता है, जिनवाणी की कृपा जिस पर होती है, जिनवाणी का वरद हस्त जिसके पास होता है वह व्यक्ति आज नहीं तो कल परमात्मा बन जाता है और जिनवाणी की कृपा दृष्टि नहीं है तो वह व्यक्ति कभी परमात्मा बन नहीं सकता।

आचार्य भगवन् श्री पद्मनंदी स्वामी कहते हैं-

विधाय मातः प्रथमं त्वदाश्रयं, श्रयन्ति तन्मोक्षपदं महर्षयः।
प्रदीपमाश्रित्य गृहे तमस्तते, यदीप्सितं वस्तु लभेत् हि मानवः॥

जिस प्रकार मनुष्य अंधकार से व्याप्त घर में दीपक के आश्रय से इष्ट वस्तु को प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार हे जिनवाणी माँ! बड़े-बड़े ऋषि पहले आपका आश्रय करते हैं, पश्चात् उस प्रसिद्ध मोक्ष-स्थान को पाते हैं।

अथाह ज्ञान, अथाह आनंद

एक छोटा बालक जब स्नान करता है, और यदि एक टब में उसे पानी मिल जाये, वह उस पानी में डुबकी लगाता है, खड़ा

होता है बड़ा आनंदित होता है, उससे बड़ा बालक किशोर यदि उसे इससे भी ज्यादा पानी मिल गया, वह उसमें तैर रहा है उसे बड़ा आनंद आ रहा है अब उसे थोड़े पानी में आनंद नहीं आ रहा और भी कोई अच्छा तैराक है वह नदी, झील में तैर रहा है और वह नदी में घंटों-घंटों तक तैर रहा है, ऐसे में कोई विकल्प नहीं, तनाव नहीं, कषाय का उद्वेग नहीं वह पानी में डूबा हुआ है, उस समय उसे ऐसा लग रहा है जैसे कि उसके आगे स्वर्ग का आनंद भी फीका है। जो व्यक्ति बहुत अच्छे तैराक होते हैं उन्हें हाथ-पाँव चलाने की आवश्यकता नहीं होती, वे आराम से लहरों में ऊपर-नीचे जाते हैं, अत्यंत आनंद की अनुभूति होती है। जब पानी ज्यादा होता है तब आनंद भी ज्यादा आता है और जब पानी कम होता है तो आनंद नहीं आता, जैसे मछली के लिए भी कहा जाता है-

''सुखी मीन जहाँ नीर अगाधा''

जहाँ पानी ज्यादा होता है वहाँ मछली को बहुत आनंद आता है, ऐसे ही जिस जीव के जीवन में जिनवाणी का ज्ञान हो जाता है उसे भी बहुत आनंद आता है। भगवान् के चरणों में बैठकर के जिनवाणी का ज्ञान प्राप्त होता है। भगवान् से बैर लेकर जो जिनवाणी पढ़ेगा वह कभी भी ज्ञानी नहीं बनेगा, जो गुरु महाराज से विमुख होकर के जिनवाणी पढ़ेगा, वह कभी भी जीवन में आत्मबोध प्राप्त न कर सकेगा। जिनवाणी गुरु और प्रभु ने मिलकर ही तो बनाई है, प्रभु ने कही गुरु ने उसे लिपिबद्ध किया है। उन दोनों से विरोध करके जिनवाणी की कृपा दृष्टि को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

एक माँ बालक को नहलाने के लिये ले जाती है एक लोटा पानी डालती है तो वह आनाकानी करता है नहाना नहीं चाहता, उसे जब जबरदस्ती नहलाती है और उसे गर आनंद आ गया तो बालक कहता है मैं तो पानी में डुबकी लगाऊँगा। इसी प्रकार अनादि

मिथ्यादृष्टि जीव जब विषय कषायों में डूबा हुआ है, जिनवाणी के पास आना नहीं चाहता, माँ जिनवाणी जब जबरदस्ती हाथ पकड़कर के तुम्हें ज्ञान के जल में डुबाती है पहले तो वह संसारी व्यक्ति दूर भागता है जिनवाणी के सागर में डुबकियाँ लगाना नहीं चाहता, यदि एक बार उसने जिनवाणी के सागर में डुबकी लगा ली, तो फिर वह बार-बार डुबकी लगाना चाहता है।

शोभा ज्ञान से

श्रावक हो या श्रमण जिसने भी जिनवाणी के तत्त्व का पान किया है उसका स्वाद लिया है ऐसा व्यक्ति उसे कभी छोड़ना नहीं चाहता। ज्ञान के सागर में डुबकी लगाना उसे ही अच्छा लगता है जिसने एक बार पहले ज्ञान के सागर में डुबकी लगा ली हो, जिसने ऐसा नहीं किया उस व्यक्ति को जिनवाणी का रसास्वादन करने में डर लगता है, स्वाध्याय सुनने में डर लगता है। वह कहता है हमारा कल्याण तो ऐसे ही हो जायेगा, इससे कुछ नहीं होता, ऐसी व्यर्थ की बात वही व्यक्ति कर सकता है जिसने कभी जिनवाणी का रसास्वादन नहीं किया हो, ऐसी बात वही व्यक्ति कर सकता है जिसने कभी दिगम्बर संतों के चरणों में बैठकर आत्म संतोष की दो बात नहीं सुनीं, जिसने कभी प्रभु परमात्मा के सामने बैठकर अपनी आँखों से दो आँसू नहीं बहाये, किन्तु जो जिनेन्द्र प्रभु के चरणों में बैठकर के दो आँसू बहा चुका है, जिसने अपनी आत्मा में अवगाहन किया है, जिनवाणी का आनंद लिया है, गुरु चरणों की सेवा की है ऐसा व्यक्ति कहता है हे भगवान्! मेरा बस चले तो दिन हो चाहे रात, भगवान् के चरणों में बैठा रहूँ, अब मुझे संसार के पदार्थों से कुछ भी लेना देना नहीं है, बस भगवान् के दो चरण चाहिये।

नारी का सौन्दर्य श्याम घने केशों से है, यदि किसी युवती के सिर पर घने बाल हों तो सौन्दर्य निखर जाता है यदि न हों तो

सौन्दर्य घटाने वाले होते हैं चाहे चेहरा चन्द्रमुखी सा ही क्यों ना हो। यदि सिर पर घने बाल हैं तो सामने वाला आकृष्ट हो जाता है, जैसे नारी के घने काले बाल सौन्दर्य का प्रतीक होते हैं वह नारी चाहे उन बालों से चोटी बनाये, जूड़ा बनाये, चाहे खुले रखे वह सब में ही सुंदर लगती है। उसी प्रकार घने ज्ञान से योगी की शोभा है, श्रमण और श्रावक की शोभा है। जितना घना ज्ञान होगा उतना ही आनंद आता है जैसे अंधकार में आपको डर लगता है ऐसे ही अज्ञान के अंधकार में श्रावक और श्रमण को डर लगता है। बिना टॉर्च के तुम जंगल में कभी जा नहीं सकते, जाओगे तो भटक जाओगे। ऐसे ही बिना तत्त्वज्ञान की टॉर्च के तुम संसार रूपी जंगल में परिभ्रमण करते रहोगे गन्तव्य को पा नहीं सकते। यदि तुम्हें मंजिल को पाना है तो हाथ में टॉर्च लेकर जाना पड़ेगा, ऐसे ही जीवन में ज्ञान हो, भले ही अक्षर ज्ञान नहीं है बस इतना सा ज्ञान है कि आत्मा अलग है, शरीर अलग है ऐसे ज्ञान को धारण करने वाला व्यक्ति भी अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने में समर्थ हो सकता है।

कैसे हो ज्ञान की प्राप्ति

उस ज्ञान को प्राप्त करने की पहली शर्त है तुम्हारे जीवन में चातक जैसी प्यास हो, तभी ज्ञान प्राप्त होगा। वह पपैया बार-बार पानी के लिये ऊपर देखता है कब मेघ बरसें पानी मिले। जो संतप्त है वह शीतल हो जाये, वह नम हो जाये। वह पक्षी महीनों से इंतजारी करता है तब उसके कण्ठ में पानी की बूंद आती है और बारिश से तृप्ति कर लेता है। जैसे सीप अपना मुँह खोलकर के बैठी है कब वह स्वाति नक्षत्र की बूंद आये, कब मोती बन जाये, पहले से प्रतीक्षा करनी पड़ती है। जो श्रावक महीनों से, वर्षों से प्रतीक्षा कर रहा था, कब हमारे नगर में मुनिराज चौमासा करें कब उनके मुख से ज्ञान का अमृत पान करें, कब हमारे अंतरंग के नेत्र खुलें, कब हमारी आत्मा कल्याण मार्ग पर अग्रसर हो।

जो पहले से इंतजारी करता है, वह तो समय का लाभ ले सकता है। जो इंतजारी नहीं करता, सोचता है जब समय आयेगा तब देख लेंगे वह लाभ नहीं ले सकता। जो व्यक्ति स्टेशन पर इंतजारी कर रहा है ट्रेन आने पर बैठ ही जायेगा। भले ही 2 मिनट पहले पहुँचा यदि हाथ में टिकिट होगा तो बैठ जायेगा। नहीं तो कई बार आँखों के आगे से ही ट्रेन निकल जाती है और वह खड़ा-खड़ा देखता रह जाता है। तो प्यासे चातक की तरह तुम्हारी प्यास हो। जितनी तीव्र प्यास होगी, तुम्हें खारा जल भी मीठा लगेगा और प्यास नहीं होगी तो अमृत का प्याला भी पीओगे नहीं। जबरदस्ती तुम्हारे हाथ में थमा दिया जायेगा तो उठाकर फेंक दोगे।

तुम्हारे जीवन में उस अमृत की कोई कीमत नहीं हो सकती। सबसे पहली शर्त ये है कि अपनी प्यास को जगाओ मूल्य पानी का नहीं है, मूल्य भोजन का नहीं है, मूल्य अन्य किसी वस्तु का नहीं है मूल्य है तो उसकी प्राप्ति के लिये तुम्हारे जीवन में कितनी गहरी प्यास है। जितनी गहरी प्यास होती है उतना ज्यादा पानी का मूल्य होता है। जितनी जिस चीज की आपको तीव्र आवश्यकता है उसका मूल्य उतना ज्यादा बढ़ जाता है। जब आवश्यकता नहीं होती है तब उसका मूल्य गिर जाता है, जिस वस्तु के खरीददार 100 व्यक्ति होंगे उसका मूल्य उतना ही बढ़ता चला जायेगा और 100 में से एक खरीद रहा है तो उसका मूल्य घट जायेगा।

महानुभाव! आवश्यकता है प्यास बढ़ाने की, जब तक प्यास का अहसास नहीं होगा तब तक पानी न पी सकोगे, जितनी गहरी प्यास होती है उतनी ही तीव्र गति कदमों में आ जाती है। जब सब कुछ छोड़कर उसके लिये समर्पित हो जाते हैं तब वह वस्तु तुम्हें प्राप्त हो ही जाती है। जहाँ पर प्यास है वहाँ आस है, अपनी

आशाओं को पीओ, उन्हें पीने से प्यास बुझ जाती है, पि+आस=प्यास। जो व्यक्ति बहुत आशावान् हो जाता है उसकी प्यास उतनी तीव्र हो जाती है, जितनी तीव्र प्यास होती है उतनी तीव्र गति होती है। ऐसे ही जीवन में ज्ञान की तीव्र पिपासा होनी चाहिये। जो पानी पिलाने वाले हैं महत्त्व उनका नहीं है, महत्त्व तो पानी पीने वाले का है। वही पानी का गिलास 10 पैसे का, वही पानी का गिलास 25 पैसे का, वही गिलास 50 पैसे का, वही पानी का गिलास 1 रु. का, 10 रु., 100 रु., 1000 रु. का भी हो सकता है और वही पानी का गिलास आपके राज्य की आधी सम्पत्ति ले सकता है।

आधा गिलास पानी की कीमत

एक राजा वन विहार के लिये गया, वन भ्रमण करते-करते अपने गन्तव्य स्थान से बहुत आगे निकल गया, थककर एक बरगद के पेड़ के नीचे लेट गया, विश्राम करते-करते सो गया। सेनापति ने सोचा राजा का नया रथ और ये घोड़े इन पर बैठने का समय कब मिलेगा? आज इस पर बैठकर देखते हैं। जब तक राजा सो रहा था वह उस पर सवारी करने बैठ गया, देखते-देखते घोड़ा हवा से बातें करने लगा और बहुत दूर ले गया। वे सब सेनापति आदि भटकते-भटकते नगर में आ गये किन्तु राजा वहीं रह गया और रास्ता भूल गया। वह जंगल में चला जा रहा है, कभी पहाड़ी पर चढ़ता है, कभी खाई के पास पहुँच जाता है किन्तु उसे सही रास्ता नहीं मिला। अब उसे प्यास भी लगी थी, भूख भी लगी थी। सूर्य अस्ताचल की ओर था।

एक पहाड़ी से चढ़कर देखा। सुदूर पर एक झोपड़ी दिखाई दी, जैसे ही झोपड़ी के सामने आया तब तक झोपड़ी का दरवाजा बंद हो गया। राजा ने दरवाजा खटखटाया-अंदर से आवाज

आयी कौन? अपना परिचय दीजिये-उसने कहा-मैं राजा, राजा कौन? यदि राजा हो तो अपने यहाँ के होंगे यहाँ जंगल में आने की क्या आवश्यकता है? उसने पुनः कहा-मैं एक भिखारी हूँ, मैं एक अशरण हूँ, तुम्हारी शरण माँगने आया हूँ। उसने दरवाजा खोला-राजा ने कहा-मुझे बहुत जोर से प्यास लगी है मेरा कंठ रुंधा जा रहा है। वह व्यक्ति बोला-यहाँ पानी नहीं मिलेगा-मैं बहुत दूर से पानी लाता हूँ प्रातःकाल 6 मील जाता हूँ तब पानी लाता हूँ, और परिचय में तुमने कहा कि मैं राजा हूँ, यहाँ के राजा के लिये तो मैं पानी दे ही नहीं सकता, उसके ऊपर दया करुणा नहीं करूँगा, हमारे यहाँ का राजा अत्याचारी है, अहंकारी है, अन्यायी है हम भी राजा की प्रजा हैं हम यहाँ जंगल में पड़े हैं, क्या कभी राजा ने हमारा ख्याल किया? हम जैसे हजारों व्यक्ति अपने जीवन को ढो रहे हैं।

राजा ने कहा कोई बात नहीं मुझे एक गिलास पानी चाहिये तेरे एक गिलास पानी का क्या मूल्य है बता? उस व्यक्ति ने कहा-क्या दे सकते हो? राजा ने कहा-मैं अपने वस्त्राभूषण दे सकता हूँ तुम्हारे एक गिलास पानी के लिये। उसने कहा-तो तुम्हें पानी नहीं मिलेगा-राजा ने कहा ठीक है 1000 दीनार दूँगा। बोला नहीं, 'मरता क्या न करता' राजा ने कहा मैं एक गिलास पानी के लिये तुझे अपना आधा राज्य दे सकता हूँ, उसने कहा ठीक है-और एक गिलास पानी राजा को दे दिया, उस राजा ने जैसे ही पानी पिया, पानी पीते ही उसके पेट में दर्द शुरु हो गया। राजा छटपटाने लगा उसे लगा मेरे प्राण जा रहे हैं, पुनः राजा ने कहा, भाई तेरे पास यदि कोई औषधि हो तो दे दे, जब पहली बार तूने भी ये पानी पीया होगा तो तुझे भी दर्द हुआ होगा। बता तूने कौन-सी औषधि का सेवन किया, वह औषधि मुझे भी दे दे।

उसने कहा-फ्री में नहीं मिलती, मेरे पास एक जड़ी बूटी है जिसे खाते ही तेरा दर्द ठीक हो जायेगा। राजा ने कहा-ठीक है बता कितने पैसे चाहिए। वह व्यक्ति बोला जो तुम्हारा आधा राज्य बचा है वह चाहिये। राजा ने कहा ठीक है कोई बात नहीं आधा राज्य बचा था वह भी दे दिया। राजा ने जड़ी बूटी खाई और पेट दर्द ठीक हो गया। एक छोटी सी जड़ी बूटी का मूल्य, आधा राज्य भी हो सकता है, एक गिलास पानी का मूल्य भी आधा राज्य हो सकता है किन्तु जब राजा को प्यास थी तब उसका मूल्य आधा राज्य है जब प्यास नहीं हो तब उसका कोई मूल्य नहीं है।

इसीलिये मैं आपसे कहता हूँ ज्ञान की प्राप्ति तभी हो सकती है जब आप ज्ञान के जिज्ञासु होंगे, तभी वह मिल पायेगा। गंगा नदी के पास जाकर भी व्यक्ति अपना कलश खाली लौटाकर ले आता है। वहाँ जाकर भी श्रम नहीं कर पाता है किन्तु जो व्यक्ति सोचकर जाता है स्नान भी करूँगा, पानी भी पीऊँगा, अपनी गगरी भी भर कर लाऊँगा तो वह व्यक्ति अपने कार्य में सफल हो जाता है किन्तु जो सोचता है कि गंगा में पानी है कि नहीं? ये पानी प्यास बुझायेगा कि नहीं, अपनी गगरी भरूँ कि नहीं, और कहीं इससे अच्छा पानी मिल जायेगा तो भर लूँगा जो ऐसा सोचता रहता है, उसको जीवन में ज्ञान का अमृत कभी उपलब्ध नहीं हो पाता है।

तो महानुभाव! जीवन में आवश्यकता है ज्ञान के अमृत को प्राप्त करने की, और सबसे पहले अपने जीवन में प्यास जगाओ, वह ज्ञान जो सुख का कारण है, आत्मा का गुण है, लक्षण है, धर्म है उस ज्ञान की वृद्धि होते-होते नि:संदेह हमारी आत्मा मोक्ष मार्ग में बहुत आगे बढ़ सकती है। आप भी उस मार्ग पर बढ़ें और कल्याण करें इन्हीं शुभभावनाओं के साथ.....।

श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।

''सिद्धचक्रं नमाम्यहं''

आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी जी ने समाधि भक्ति में लिखा है:-

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्म, वाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं, सर्वतः प्रणिदध्महे।।1।।
कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं, मोक्षलक्ष्मी निकेतनम्।
सम्यक्त्वादि गुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम्।।2।।

प्रथम कारिका का अर्थ देखें-''अर्हं इति अक्षर'' ब्रह्मवाचक परमेष्ठिनः'' अर्हं जो बीजाक्षर है वह सर्व बीजाक्षरों का शिरोमणी बीजाक्षर है, उत्कृष्ट है। अकार से लेकर के हकार पर्यंत समस्त अक्षरों का सार इस अर्हं में आ जाता है।

अर्हं शब्द अरिहन्त का वाचक है और अरिहन्त परमेष्ठी की अवस्था संसार में सारभूत अवस्था है। सिद्ध अवस्था संसार से परे है अरिहन्त अवस्था संसार में है। अन्य सभी पद अरिहन्त पद से नीचे हैं इसलिए संसार के जितने भी चक्रवर्ती, इन्द्र, नरेन्द्र, अहमिन्द्र, धरणेन्द्र, कामदेव, बलदेव, नारायण आदि अरिहन्त के चरणों में प्रणाम करते हैं। अरिहन्त किसी के भी चरणों में प्रणाम नहीं करते। 'अर्हं इति अक्षर' अर्हं जो अक्षर है वह कहीं भी क्षरण अवस्था को प्राप्त नहीं होता, वह शाश्वत अक्षर है। अनादिकाल से है, अनंतकाल तक रहेगा। इसकी शक्ति अचिन्त्य है।

अर्हं का अर्थ

आचार्य माघनंदि स्वामी ने शास्त्रसार समुच्चय में लिखा है-

अकारः परमो बोधो, रेफो विश्वावलोकदृक्।
हकारोऽनन्तवीर्यात्मा, बिन्दु स्यादुत्तमम् सुखम्।।38।।

''अर्हं'' इस मंत्र में जो अकार है वह अनन्त ज्ञान का वाचक है,

'रेफ' अनंत दर्शन, हकार अनंतवीर्य का और बिन्दु अनंत सुख की वाचक है।

यह आत्मा का वाची है, ब्रह्म का वाची है और आत्मा अनादिनिधन है आत्मा को कभी नष्ट नहीं किया जा सकता। जब आत्मा को नष्ट नहीं किया जा सकता तो आत्मा के वाचक अक्षर को भी नष्ट नहीं किया जा सकता। आत्मा अनादिकाल से है चाहे आत्मा ने निगोद में एक श्वाँस में 18 बार जन्म-मरण किया, चाहे सागरों पर्यंत नरक में असहनीय तीव्र वेदना को सहा, कढ़ाई में खौलते रहे, घानी में पिलते रहे और चाहे तिर्यंच अवस्था में कत्लखाने में काटा गया, चाहे मनुष्य अवस्था में इस आत्मा को कितना भी दु:ख दिया किन्तु यह आत्मा नष्ट नहीं हुयी।

आत्मा नष्ट नहीं होती किन्तु आत्मा के साथ लगे कर्म नष्ट हो सकते हैं इसीलिये अरिहन्त भगवान् ने उन्हें नष्ट कर दिया, इसीलिये वे परमेष्ठी की अवस्था को प्राप्त हो गये हैं। परमेष्ठी पाँच होते हैं जिनमें 3 छद्मस्थ होते हैं, एक परमेष्ठी देहातीत होते हैं और एक अर्हं जो ब्रह्मस्वरूपी आत्मा को पूर्णतया जानने वाले होते हैं।

परमेष्ठी शब्द के अर्थ

परमेष्ठी परंज्योतिर्विरागो विमलः कृती।
सर्वज्ञोऽनादि मध्यान्तः सार्वः शास्तोपलाल्यते।।र.क.श्रा.।।7।।

आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी ने परमेष्ठी शब्द की व्याख्या में कहा-है। **परमेष्ठी** कहो तो अरिहंत भगवान् का मुख्य रूप से ग्रहण होता है। **परमज्योति** कहा तो अनंत दर्शन से सहित अरिहन्त भगवान् का ग्रहण होता है। **'विरागो'**-विगतराग अर्थात् वीतरागी जिसमें अरिहंत अवस्था को मुख्यता से लिया जाता है। **''विमल''** घातिया कर्म रूपी मल से रहित अरिहंत। **'कृति'**-करने

योग्य कार्य संसारी प्राणी करता है सिद्ध कभी कोई कार्य नहीं करते। कृतिकार वह होता है जो करने वाला है या जिसने काम किया है। कृत्य-कृत्य का अर्थ होता है जो करना था सो कर लिया।

कृति-शब्द का अर्थ होता है कर्ता के द्वारा किया हुआ कार्य जो प्रकट में देखने में आये उसे कृति कहते हैं। जो देखने में नहीं आये उसे कृति नहीं कहते। आकृति शब्द इस कृति से ही बना है। जैसे कोई पुस्तक आपके हाथ में आये और पूछा जाये यह कृति किसकी है तो आप उसके लेखक का नाम बता देंगे, या यह टेबल किसकी कृति है, किसने बनाई है तो कारपेन्टर का नाम ले लेंगे। तो जो चीज ग्रहण करने में आ रही है चाहे आँखों के द्वारा, शब्दों के द्वारा या अन्य प्रकार से आ रही है तो उसे कृति कहेंगे, जो ग्रहण करने में नहीं आ रही उसे कृति और कृतिकार नहीं कह सकते।

जैसे एक व्यक्ति ने ध्यान लगाया, उसे आनंद का अनुभव हुआ अब तुम उससे पूछो कि कृति क्या है तो वह तुम्हारे पकड़ में नहीं आ रही जब कृति पकड़ में नहीं आ रही तब तुम कृतिकार तक कैसे पहुँच पाओगे। कृति को देखकर के कृतिकार के बारे में ज्ञान होता है, व्यक्ति वहाँ तक पहुँचता है। कृतिकार पर्दे के पीछे छिपा रहता है उसे सामने लाने वाली उसकी कृति होती है।

अरिहंत भगवान् की दिव्यध्वनि नहीं होती तो वे भी पीछे को हो जाते। उस सर्वज्ञ की वाणी से, उनके ज्ञान से, सर्वज्ञ के गुणों से हम सर्वज्ञ की पहचान कर पाते हैं। आज सर्वज्ञ नहीं हैं। सर्वज्ञ की तपस्या का फल समवशरण दिखाई दे रहा है इसलिये पकड़ में आ रहा है और कृति की कोई सीमा नहीं होती बहुत विराट रूप होती है। कृति का कोई काल निश्चित नहीं है दीर्घकाल तक रहती है किन्तु कृतिकार की एक सीमा है, काल की भी सीमा है, द्रव्य की भी सीमा है, क्षेत्र की भी सीमा है किन्तु कृति निस्सीम भी हो

सकती है। तो अरिहंत भगवान् निस्सीम हैं वे कृति हैं उन्होंने ऐसी तपस्या की, साधना की सब कुछ ऐसा किया जिसकी कृति हमारे सामने परमौदारिक अरिहंत के रूप में दिखाई दे रही है वह अरिहंत अवस्था दिखाई दे रही है।

आगे कहा-**''सर्वज्ञ''** ऐसा कुछ भी शेष नहीं है जो उनके ज्ञान के बाहर हो। अरिहंत परमेष्ठी के ज्ञान में सब कुछ झलक रहा है। सिद्धों के ज्ञान में जो झलक रहा है वह हमें नहीं मालूम। अरे हमें तो सिद्धों का ही नहीं मालूम, जब हमें सिद्धों का ही नहीं मालूम तो उनके ज्ञान का कैसे मालूम चलेगा। अरिहंत का प्रमाण है, उनकी दिव्यध्वनि खिर रही है। सिद्ध कहाँ हैं? अरिहंतों ने बताया लोकाग्र पर विराजमान हैं इसलिये हम मान रहे हैं यदि वे नहीं कहते तो हम कैसे जानते कि कहाँ हैं सिद्ध और कौन हैं सिद्ध।

''आदि-मध्य-अंत रहित'' अरिहंत अवस्था अनादिकाल से है इसका कोई आदि नहीं है, अनंतकाल तक रहेगी इसका कोई अंत नहीं है और जिसका आदि-अंत नहीं होता उसका मध्य भी नहीं हो सकता। जिसके दो छोर हों उसका मध्य निकाला जा सकता है जिसका कोई ओर-छोर ही नहीं है उसका मध्य कैसे ज्ञात करोगे। तो अरिहंत भगवान् आदि, मध्य व अंत से रहित हैं।

''सार्वः शास्तो पलाल्यते'' वे स्वयं अनुशासित हैं। सिद्ध भगवान् अनुशासक नहीं हैं, अरिहंत भगवान् लोकोपकारक हैं, सिद्ध भगवान् लोकोपकारक नहीं हैं, अरिहंतों के माध्यम से उपकार होता है उनकी दिव्यध्वनि की वर्गणाओं से वातावरण ही बदल जाता है, मंगल ही मंगल होता है, शुभ ही शुभ होता है। पुण्य बढ़ता चला जाता है जैसे इत्र की वर्षा हो रही हो ऐसा वहाँ का पूरा वातावरण सुगंधित हो जाता है। ऐसे ही तीर्थंकर सर्वज्ञ देव कोई भी हैं अरिहंत अवस्था में उनकी आत्मा में विद्यमान कार्माण वर्गणायें जो अशुभ

थीं वे तो उन्होंने नष्ट कर दीं, अब जो पुण्य वर्गणायें हैं कर्म की, सातावेदनीय, उच्चगोत्र, शुभायु की जो वर्गणायें हैं उनसे पूरा वातावरण मंगलमय हो गया अर्थात् वे लोकोपकारी हैं।

ऐसा उपकार सिद्धों के माध्यम से नहीं होता। सिद्धों की आत्मा के बीच में अनंत निगोदिया जीव भरे पड़े हैं उनका कल्याण नहीं हो रहा किन्तु अरिहंतों के पास जो पहुँच जायेगा वह नियम से अपना कल्याण कर लेगा। यहाँ तो अरिहंतों के निकट पहुँचकर ही सम्यग्दर्शनादि प्राप्त कर लेते हैं, सिद्धों की तो आत्मा में भी निगोदिया जीव पहुँच जाते हैं तब भी कोई सम्यक्दृष्टि नहीं हो रहा। अरिहंतों के पास पहुँचकर वैराग्य हो सकता है, अणुव्रती-महाव्रती बनकर विशुद्धि बढ़ी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी हो गये और श्रेणी माड़कर केवल ज्ञानी भी हो गये किन्तु सिद्धों के पास पहुँचकर ऐसा नहीं होता। तो **''सार्वः''** वे अरिहंत भगवान् कैसे हैं? लोकोपकारी लोक का उपकार करने वाले हैं।

शास्ता-अनुशासक। अनुशासक वह होता है जिसने अपनी आत्मा को अपने वश में कर लिया हो। जब आत्मा वश कर ली तो आत्मा के साथ लगा शरीर, शरीर के साथ लगी इन्द्रियाँ, शरीर में विद्यमान मन, शरीर में विद्यमान वचन सबको ही वश में कर लिया। अनादिकाल से यह विश्व का नियम रहा है कि विश्व उसके अनुशासन में रहता है जो विश्व पर अनुशासन करना नहीं चाहता। जो जिस पर अनुशासन करना चाहता है वह उसके अनुशासन में नहीं रहना चाहता। मालिक कितना भी अच्छा हो यदि अपने सेवक पर हुकुम चलाता है, तो सेवक के मन में भावना यही आयेगी कि हे भगवान् कब इससे पिण्ड छूटे, इनकी आज्ञा में न रहना पड़े और जो मालिक मुक्त छोड़ दे जैसा तेरा मन हो वैसा कर, तो वह सेवक उसके चरणों को छोड़कर नहीं जाता।

ऐसे ही अरिहंत भगवान् ने अपनी आत्मा पर अनुशासन कर लिया है इसीलिये पूरा विश्व उनके शासन में रहने के लिये तत्पर रहता है, सोचता है इनके ही चरणों में मेरा कल्याण है। यदि मैं इनको छोड़कर स्वतंत्र हो गया तो समझो संसार में डूब गया। स्वतंत्र हो जाऊँगा तो कर्म मुझे पकड़ लेंगे और यदि इनके ही पास रहूँगा तो कर्मों की दाल यहाँ नहीं गलेगी। मिथ्यात्वादि कर्म, अनंतानुबंधी कषायें आदि यहाँ भटकेंगी भी नहीं। अशुभायु, अशुभनामकर्म, असातावेदनीय, नीचगोत्र आदि निकृष्ट प्रकृतियों का बंध नहीं हो सकता। इसीलिये संसार के भव्य पुण्यात्मा जीव भगवान् के चरणों में रहना चाहते हैं।

सिद्धत्व का बीज

अर्हं क्या है? अर्हं सिद्धत्व का बीज है। बिना अर्हं के सिद्धत्व पैदा नहीं होता। पंचकल्याणक प्रतिष्ठायें होती हैं तो नाभि पर अर्हं बीजाक्षर की प्रतिष्ठापना की जाती है उसके बिना तो अरिहंत दशा ही नहीं आती। जिसकी अरिहंत दशा आ गयी है वह नियम से सिद्ध दशा को प्राप्त करेगा ही करेगा। ये बीज ऐसा है कभी सड़ता नहीं, घुनता नहीं, दीमक नहीं लगती। ये बीज तो अंकुरित होता ही है कभी गलता नहीं। यह अरिहंत अवस्था का ऐसा बीज है जो नियम से सिद्धत्व को देने वाला होता है। जिसके फलने में कोई अंतराय नहीं, कभी कोई विघ्न नहीं।

कभी ऐसा भी होता है कि पेड़ पर फल देरी से आते हैं। मतलब-मतलब यह कि अरिहंत अवस्था का बीज बो दिया तो सिद्धत्व का फल तो लगेगा किन्तु कभी तो बीज बोते ही फल आ जाते हैं अंतर्मुहूर्त में सिद्ध अवस्था हो गयी किन्तु कभी-कभी 8 वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम 1 कोटि पूर्व काल तक की भी प्रतीक्षा करनी पड़

सकती है अर्थात् इतनी देर भी लग सकती है किन्तु ये पक्की बात है कि अरिहन्त अवस्था का बीज है तो सिद्ध अवस्था का फल मिलेगा जरूर, उसे कोई रोक नहीं सकता, उस फल के बाद कोई दूसरा फल इस पेड़ पर लगता नहीं जैसे तीर्थंकर की माँ पूरे जीवनकाल में एक बार ही प्रसववती होती है दूसरी बार प्रसववती नहीं होती न हो सकती है, ऐसे ही अरिहंत अवस्था के बीज में केवल एक ही फल लगता है और वह सिद्ध फल होता है।

बात चल रही थी कि अर्हं से सिद्धत्व रूपी केवल एक ही फल मिलता है जैसे तीर्थंकर की माता से एक ही पुत्र की उत्पत्ति होती है अन्य नहीं और उसमें भी तीर्थंकर वह लगाना है जो पूर्व में तीर्थंकर प्रकृति का बंध करके आया है। यदि यहाँ मनुष्य बनकर के उसने मुनि या साधक अवस्था में तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया है तो उनके भाई-बहिन और भी हो सकते हैं, इसमें कोई बाधा नहीं।

महानुभाव! **''सिद्धचक्रस्य''** सिद्ध चक्र का अर्थ है सिद्धत्व का समूह, हमारी आत्मा एक है किन्तु एक आत्मा के साथ सिद्धत्व के कारणभूत अनंतगुण हैं। देखो कारण दो प्रकार के होते हैं पहला क्रमिक कारण, दूसरा सहवासी कारण। क्रमिक कारण कैसे?-दीपक जलाया माचिस से। पहले माचिस जलायी तब दीपक जला, तो यह कहलाया क्रमिक कारण। किन्तु दीपक के प्रकाश से ताप भी आता है, प्रकाश भी आता है अर्थात् दीपक की ज्योति प्रकाश में कारण है, दीपक की ज्योति ऊष्मा में कारण है। दीपक की ज्योति अर्थात् प्रकाश भी है, ऊष्मा भी है, यह कहलाता है सहवासी कारण।

अरिहन्त अवस्था सिद्ध अवस्था के लिये क्रमभावी कारण है, दोनों साथ-साथ नहीं हो सकते किन्तु अरिहन्त अवस्था में विद्यमान गुण, वीतरागी दशा कारण है और अनंतज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य ये उसके कार्य हैं। तो ये सहभावी कारण हैं, अरिहन्त अवस्था के रहते

ये सब गुण एक साथ रह सकते हैं। तो कहा सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतःप्रणिदध्महे-**सर्वतः** अर्थात् सब ओर से। ऐसा नहीं कि अरिहंत अवस्था सिद्ध अवस्था की बीज किसी विशेष स्थान या समय पर है। नहीं, वह तो सर्वतः सब जगह, हरकाल में, हर क्षेत्र में कहीं भी हो अरिहन्त अवस्था सिद्धत्व दशा की नियम से बीज है। **'प्रणिदध्महे'**-इसीलिये मैं प्रकृष्ट रूप से नमस्कार करता हुआ उस अरिहन्त अवस्था को या उस अर्हं बीजाक्षर को अपने चित्त में धारण करता हूँ। पुनः इसको धारण करने से

''कर्माष्टक विनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मी निकेतनं''

आठों कर्मों का समूह, जो सदैव साथ रहते हैं। सुना जाता है सारस के बारे में कि उनकी जोड़ी होती है यदि एक मर जाये तो उसके बिना दूसरा भी मर जाता है। देवों में भी होता है देवी मर जाये तो दूसरी देवी आ सकती है किन्तु यदि देव मर जाये तो उसकी नियोगिनी देवी छः माह से अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकती। ये आठों कर्म आपस में इतने पक्के मजबूत हैं जैसे अनंतानुबंध की चौकड़ी क्रोध-मान-माया-लोभ ऐसे ही ये आठ की कड़ी है। इन आठ अष्टक में से किसी एक को समूल मार दो तो सातों उसी भव में नियम से मारे जायेंगे।

आठ में से जो सबसे ज्यादा हीरो बन रहा है कौन बन रहा है? **'मोहनीयकर्म'**। उसकी 28 प्रकृति नष्ट कर दो 100% उसी भव में सभी कर्म मृत्यु को प्राप्त हो जायेंगे। ये आपस में एक दूसरे से इतना प्रेम करते हैं यह एक दूसरे को देखकर ही जीते हैं। हाँ! यदि मोहनीय कर्म का आधा भाग नष्ट कर दिया जाये, राहु-केतु की तरह से सिर अलग, धड़ अलग कर दिया तब तो खिचटते-खिचटते दो-तीन भव तक चला जाता है अर्थात् या तो उसी भव में मोक्ष

हो जायेगा अन्यथा तीसरे में हो जायेगा किन्तु चौथे भव में तो दम तोड़नी ही पड़ती है सातों कर्म नष्ट हो ही जाते हैं।

आठों कर्मों से मुक्ति मिलती है। मानो गंगा नहा लिये, उन कर्मों को तिलांजलि दे दी। तिल की अंजली देने का मतलब होता है-मृत्यु। उन आठों कर्मों की मृत्यु हो गयी। फिर क्या हुआ मृत्यु से हमें क्या मिला? **मोक्षलक्ष्मी निकेतनं**-मोक्षलक्ष्मी का महल मिल गया। जहाँ हमारी मुक्ति श्री है वह वहाँ हमारी इंतजारी कर रही थी। हम यहाँ संसार की अंगना में रमण कर रहे थे, संसार की वस्तुओं में रंजायमान हो रहे थे वह अनादिकाल से इंतजारी कर रही थी, कब तक इंतजारी करे, उसका ख्याल ही नहीं आ रहा था तो अब वहाँ पहुँच गये। **'सम्यक्त्वादि गुणोपेतं'** वहाँ पर सम्यक्त्व आदि आठ गुण प्राप्त हो गये। **'सिद्धचक्रं नमाम्यहं'** ऐसे आठ गुणों से सहित समस्त सिद्धों के समूह को मैं नमस्कार करता हूँ।

आप सभी लोग भी यहाँ उन सिद्ध परमेष्ठियों को नमस्कार कर रहे हैं उनकें गुणों की प्रधानता को नमस्कार कर रहे हैं उनके एक-एक गुण को नमस्कार कर रहे हैं। अनंत सिद्धों को नमस्कार किया तब भी अनंत गुणों को नमस्कार है, अनंत गुणों को नमस्कार किया तो भी अनंत सिद्धों को ही नमस्कार है। गुण और गुणी कभी अलग-अलग नहीं होते इसीलिये गुणों को नमस्कार करने से भी गुणी को नमस्कार होता है और गुणी को नमस्कार करने से गुणों को नमस्कार होता है।

आप गुणों को नमस्कार कर रहे हैं आपका आनंद गुणित रूप से वृद्धि के प्राप्त हो ऐसी मंगल भावना को भाता हूँ, इसी भावना के साथ.....।

श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।

''स्वसंवेदी आत्मा''

महानुभाव! हमारा सिद्धों जैसा स्वभाव है। हमारा स्वभाव है अनंत गुणों से युक्त होना। मूर्तिक के बारे में तो बहुत कुछ समझ में आता है, देखने में आता है, सुनने में आता है, कहने में आता है। अमूर्तिक के बारे में दूसरों को समझाना तो फिर भी सरल हो जाता है किन्तु स्वयं को समझाना बड़ा कठिन होता है।

इष्टोपदेश में परमात्मा का, आत्मा का, सिद्धों का स्वरूप कहा-

स्वसंवेदन-सुव्यक्त-स्तनुमात्रो निरत्ययः।
अत्यंत-सौख्यवानात्मा लोकालोक-विलोकनः॥21॥

आत्मा का स्वरूप कैसा है? ''स्वसंवेदन सुव्यक्तस्'' यह आत्मा सिर्फ स्वसंवेदन से व्यक्त होने के योग्य है अन्य किसी प्रकार से इसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। संसार में जितने भी जानने के साधन हैं उन सभी साधनों में केवल एक ही साधन है आत्मा को जानने का, स्वसंवेदन। जैसे संसार के जितने अनंत मार्ग हैं उनमें एक ही मार्ग है मोक्ष का, अन्य न कोई मार्ग था, न है, न होगा।

''णग्गो हि मोक्खमग्गो सेसा हु उम्मग्गया सव्वे''

आत्मानुभव

संसार के पदार्थों को जानने के अनेक उपाय हैं। शब्द ज्ञान के माध्यम से संसार के समस्त पदार्थों की जानकारी दी जा सकती है। दूसरे की आत्मा के बारे में, परमात्मा के बारे में भी शास्त्रों में लिखा है, धर्म और धर्म के फल के बारे में भी लिखा है किन्तु आज तक मुझे ऐसा कोई शास्त्र नहीं मिला जिसमें मेरी आत्मा के बारे में लिखा हो। जो कुछ पढ़ने में आता है वह आत्मा की सामान्य दशा-विशेष दशा पढ़ने में आती है किन्तु मेरी आत्मा की दशा कहीं

पढ़ने में नहीं आयी। उसे कोई भी शब्दों में लिख नहीं सकता, कोई भी केवली दिव्यध्वनि के माध्यम से कह नहीं सकते, अनंत सिद्ध परमेष्ठी भी मेरी अनुभूति को मुझे दे नहीं सकते।

मेरी आत्मा की परिणति मेरे ही जानने में आ सकती है किसी और के जानने में नहीं। वह अनुभवगम्य चीज है। जो चीज जिसके द्वारा ग्रहण की जा सकती है वह उसके द्वारा ही ग्रहण की जा सकती है, जैसे रूप को आँख से ही ग्रहण कर सकते हैं, नासिका से नहीं, कर्ण से नहीं, जिह्वा से नहीं, स्पर्श इन्द्रिय से नहीं। स्वाद को रसना इंद्रिय से ग्रहण किया जा सकता है अन्य इन्द्रियों से नहीं। शब्द को ग्रहण करने के लिये कर्ण इन्द्रिय ही समर्थ है अन्य इन्द्रियों के माध्यम से शब्दों का ग्रहण संभव नहीं और न कभी संभव हो सकता है।

कुछ लोग जो जिनागम के मूल सिद्धान्त को नहीं जानते वे अल्पज्ञतावश, अज्ञानतावश कह देते हैं कि सर्प के कान नहीं होते इसलिये पार्श्वनाथ स्वामी ने सर्प को णमोकार मंत्र नहीं सुनाया था वह सुन ही नहीं सकता। उन अल्पज्ञों को ज्ञान होना चाहिये सर्प पंचेन्द्रिय जीव है, संज्ञी है। एक व्यक्ति ने लेख लिखकर भेजा-मैंने सपेरे से पूछा कि सर्प के कान हैं तो मुझे बताओ। सपेरे ने कहा सर्प के कान नहीं होते, तो मैंने कहा फिर वह बीन की ध्वनि कैसे सुनता है बोले-उसके शरीर पर जब बीन की वर्गणायें टकराती हैं तो नाचने लगता है। हमने उस विद्वान् की बुद्धि पर तरस खाते हुये सोचा इसका कल्याण करना बड़ा कठिन है जिसके लिये सपेरे की बात प्रमाणिक है, केवली की नहीं।

आत्मा में रमण, मुक्ति का वरण

महानुभाव! कर्ण के बिना शब्दों को ग्रहण नहीं किया जा सकता। आप जानते हैं एक इन्द्रिय, दूसरी इन्द्रिय के विषय को ग्रहण

नहीं कर सकती। व्यवहार में देखते हैं एक व्यक्ति के काम को दूसरा व्यक्ति नहीं करता सबके अलग-अलग काम हैं फिर आत्मा को अनात्मा कैसे करेगी। हमारी आत्मा के काम को दूसरी आत्मा कैसे कर सकती है। इसलिये कहा **'स्वसंवेदनसुव्यक्तः'**। आत्मा को शब्दों में कितना ही कहो किन्तु सत्यता ये ही है कि आत्मा बिना अनुभव के ज्ञान में, पकड़ने में, ग्रहण करने में नहीं आती। चाहे खुद को धोखा दो या दूसरों को धोखा दो, ग्रंथ पढ़-पढ़ कर शब्दों को कण्ठस्थ किया जा सकता है, किंचित् भी आत्मा का अनुभव नहीं किया जा सकता। जो घी दूध में से निकलता है वह घी दूध में से ही निकलेगा उसे अनंतकाल के उपरांत भी पानी में से पैदा नहीं किया जा सकता है।

आत्मा का अनुभव आत्मा ही करती है आत्मा के द्वारा ही करती है, आत्मा के लिये ही करती है, अनात्मा से पृथक् होने पर आत्मा के गुणों का, आत्मा में करती है। इसीलिये हे आत्मन्! उस आत्मा में तू रमण कर। क्योंकि आत्मा के अलावा अनंत बार तूने अनात्मा में रमण करके देख लिया है। अनात्मा में रमण करना बार-बार मरण करना है और आत्मा में रमण करना मुक्ति रमा का वरण करना है। इसीलिये आचार्य महोदय कह रहे हैं **स्वसंवेदन सुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः**।

आत्मा कैसी है-तनुमात्र। जितने हिस्से में आत्मा के प्रदेश हैं वहाँ तक शरीर को अनुभूति होती है, सुई चुभाओ तो कष्ट होता है, अनुभव में आता है। जहाँ आत्मा के प्रदेश नहीं है जैसे नाखून या बालों को काटा जाये तो वहाँ आत्मा को कष्ट नहीं होता है तो आत्मा शरीर के आकार में है जितना बड़ा शरीर उतने आत्मा के प्रदेश।

अविनश्वर है आत्मा

'निरत्ययः' वह आत्मा शाश्वत है। उसे किसी भी प्रकार से नष्ट नहीं किया जा सकता चाहे विश्व की पूरी शक्ति भी लगा दी जाये तब भी किसी भी आत्मा के एक प्रदेश को भी नष्ट नहीं किया जा सकता।

सम्यक्दृष्टि निर्भीक होता है। मेरी आत्मा में पूर्व में भी असंख्यात् प्रदेश थे, आज भी हैं, अनंतकाल के बाद भी रहेंगे फिर डर किस बात का? कोई भी मेरी आत्मा का एक गुण भी छीन नहीं सकता और कोई मुझे अपनी आत्मा का एक गुण दे नहीं सकता। पुद्गल तो छोड़ो वह तो अलग है ही जब कोई मुझ पर कृपादृष्टि करके अपनी आत्मा का गुण नहीं दे सकता मैं उसके गुण को नहीं ले सकता तो भय किस बात का। मुझे किसकी कृपादृष्टि की आवश्यकता है, मुझे किससे भय? इसीलिये सम्यक्दृष्टि निर्भीक रहता है और वह सोचता है मेरी आत्मा मेरे ही द्वारा बंधन बध्य है मेरे द्वारा ही मुक्त होने के योग्य है।

मेरी आत्मा मेरे द्वारा ही अनुभवगम्य है, मेरी आत्मा मेरे द्वारा ही तिरस्कार करने के योग्य है अथवा वंदना के योग्य है। दूसरे के द्वारा नमस्कार होने से आत्मा वंदनीय नहीं होती जब तक मैं अपनी आत्मा को वंदना के योग्य न बना लूँ।

अनंत सुख से युक्त है आत्मा-

वह आत्मा और कैसी है-'अत्यंत सौख्यवानात्मा' आत्मा अत्यंत सौख्यवान् है। अत्यंत कहते हैं नितान्त जिसका कहीं कोई अंत ही नहीं, इतना सुख जिसे कह ही नहीं सकते। वह सुख भी केवल एक क्षण के लिये नहीं 'निरत्यय' वह शाश्वत है। ऐसा सुख जो एक बार प्रकट हो जाये तो फिर कभी नष्ट नहीं हो सकता। एक

बार उसकी पर्याय प्रकट हो जाये तो पुनः वह नष्ट नहीं हो सकती। दूध एक बार घी पर्याय को प्राप्त हो जाये तो वह घी कभी दूध पर्याय को प्राप्त नहीं हो सकता, दही नहीं बन सकता, मावा नहीं बन सकता। ऐसे ही हमारी आत्मा का जो गुण है, सुख है वह जब तक विभाव अवस्था को प्राप्त है तब तक दुःख रूप है, जब स्वभाव को प्राप्त हो जायेगा तो सुख रूप हो जायेगा। फिर कभी भी विभाव पर्याय में नहीं जायेगा।

महानुभाव! अभी जो संसार में सुख अनुभव होता है वह क्षयोपशम भाव है, दुःख से मिश्रित है। शुद्ध सुख की अनुभूति आज तक कोई भी छद्मस्थ नहीं कर सका। शुद्ध सुख की अनुभूति वीतरागी दशा केवली अवस्था में ही संभव है यद्यपि बारहवें गुणस्थान का नाम क्षीणमोह है, यहाँ मोह का नितांत क्षय है। अनंत सुख वहाँ पर होना चाहिये किन्तु अनंतसुख को प्राप्त करने के लिए उसका अनुभव करने के लिये अनंतशक्ति भी चाहिए और वह अंतरायकर्म के क्षय होने पर ही प्रकट होती है तभी अनंतसुख का अनुभव होगा। और अनंत शक्ति तब प्राप्त होती है जब अनंतज्ञान हो और अनंत ज्ञान तब अपना काम करता है जब अनंतदर्शन हो। 12वें गुणस्थानवर्ती अनंत सुख से सहित तो होते हैं किन्तु कहीं लिखा नहीं कि वे अनंत सुख से युक्त होते हैं। केवली को कहते हैं कि वे अनंत चतुष्टय से युक्त हैं क्षीण मोह वाले को नहीं कहते। क्योंकि उनके पास अनंत सुख है पर अभी उससे साक्षात्कार नहीं हुआ।

जैसे कोई विद्यार्थी परीक्षा में पास हो गया, कॉपी चैक हो गयी रिजल्ट अभी आउट नहीं हुआ वह विद्यार्थी खुशी कैसे मनाये? वह तो खुश तब होगा जब उसके पास समाचार आये कि तुम पास हो गये हो और यह समाचार आता है केवली दशा में, 13वें गुणस्थान में। आत्मा, स्वभाव से अत्यंत सुख से निहित है।

ज्ञाता और दृष्टा

'लोकालोक विलोकनः' आत्मा लोक और अलोक को जानने-देखने वाली है, यह बात व्यवहार की भाषा में कह सकते हैं। वास्तव में यूँ कहना चाहिये वह आत्मा इतनी निर्मल हो जाती है कि लोक और अलोक स्वतः ही उसमें झलकते हैं। व्यवहार की भाषा में नियमसार में आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी जी ने कहा है। भगवान् सब कुछ जानते और देखते हैं। निश्चय से कहा जाये तो वे किसी को जानते देखते नहीं हैं। अपने आप को जानते-देखते, अनुभव करते हैं अपने में लीन रहते हैं अन्य तो उसमें झलक रहा है। दर्पण किसी को देख नहीं रहा और देखने की चेष्टा भी नहीं कर रहा, ज्यों की त्यों अपने आप में स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में स्थित है। उस दर्पण में पदार्थ अपने आप झलक रहे हैं, उन पदार्थों के झलकने से दर्पण विकृत भी नहीं होता। सामने बर्फ रखी हो तो दर्पण ठंडा नहीं होता अग्नि जल रही हो तो गर्म नहीं होता, वह निर्विकार ही रहता है ऐसे ही हमारी आत्मा जो सिद्धों के समान है, सिद्धों की आत्मा संसार झलकते हुये भी विकार रहित है। ये हमारी आत्मा का स्वभाव है।

महानुभाव! उन्हीं सिद्धों की उपासना करें और भावना भायें कि हमारे अंदर ऐसी शक्ति प्राप्त हो कि हम परम पुरुषार्थ कर सकें, इस पुद्गल के पिण्ड से हमारा राग छूटे, वैराग्य जागे। राग छूट जायेगा तो त्याग हो जायेगा और राग नहीं छूटेगा तो त्याग नहीं हो पायेगा। राग छूट गया तो यहाँ बना पुद्गल पिण्ड भी हमें बाँधेगा नहीं और राग नहीं छूटा, ये शरीर छूट भी गया तब भी कर्मों का बंध निरंतर चलता रहेगा। हम इस पुद्गल के पिण्ड के प्रति अपना मोह कम करें चाहे मकान है, कोठी है, बंगला है, दुकान है, स्वजन-परजन सबके प्रति राग-मोह कम करें तो सुख की अनुभूति होगी।

दुकानदार तुम्हें चखाता है, थोड़ा गुड़ देकर कहा चखो-ऐसा नहीं पूरी गुड़ की डेली खाओगे तभी मुँह मीठा होगा, थोड़ा खाकर ही मुख मीठा हो जाता है आनंद आ जाता है। ऐसे ही आचार्यों ने कहा कि थोड़ा मोह को कम करके देखो तो तुम्हें सुख की अनुभूति होगी। जब पूरा मोह नष्ट हो जायेगा तो पूर्ण सुख की अनुभूति हो जायेगी। आचार्य महाराज कह रहे हैं बस एक बार मेरी बात मान ले। बस एक बार छः माह मेरे पास रुक जा, शरीर को पड़ोसी मानकर के बैठ जा, बस आत्मा का अनुभव कर तुझे परमात्मा की अनुभूति हो जायेगी।

धोना है विकारों को

महानुभाव! उन्होंने लोभ दिया और कहा-देख मेरे पास नहीं आ सकता है तो कोई बात नहीं-

बैठ अकेला दो घड़ी चेतन, आतम ध्यान लगाया कर।
मन मंदिर में रे मेरे जियरा, झाड़ू रोज लगाया कर।

रे भव्य जीव! न सही 60 घड़ी, मात्र दो घड़ी ही सही तुम्हारे मन पर जो गंदगी है उसे साफ कर लो, क्योंकि अंगारे पर जब राख जम जाती है तो अग्नि का ज्ञान नहीं होता, न तो अग्नि का गुण दिखाई देता है, न उसकी ऊष्मा आती है, न प्रकाश दिखाई देता है, जब साफ कर दो तब सब दिखाई देता है ऐसे ही आत्मा पर जब विकारों का कचरा जमा हो जाता है तब आत्मा का अनुभव नहीं हो पाता, सुख-शांति का अनुभव नहीं होता।

अनादिकालीन कुसंस्कारों के वशीभूत होकर हम अपने विवेक का प्रयोग नहीं कर पाते इसीलिये छोटी-छोटी, थोड़ी-थोड़ी बातों पर क्रोध कषाय, मान कषाय आ जाती है, कहीं मायाचारी व लोभ की प्रवृत्ति आ जाती है। कुसंस्कारों की और ज्ञान की आपस में लड़ाई है जैसे ही हम चूके कुसंस्कार आकर हम पर हावी हो गये,

ज्ञान बुद्धि खो गयी और जैसे ही हम जाग्रत हो गये तो कुसंस्कारों को उठाकर गर्त में पटक दिया और हम शहंशाह बन गये। जब भी आपसे किसी व्यक्ति ने कोई शब्द कहा तो आप उसे जल्दी में जवाब मत दो, थोड़ी देर ठहर कर सोचो कि इसके शब्द से मुझे अपनी विशुद्धि बढ़ानी है या संक्लेशता बनानी है।

ज्ञान का सदुपयोग

कोई सब्जी/फल बेचने वाला तुम्हारी गली में आता है और वह कहे कि जल्दी करो तो आप कहते हैं भाई ठहर जा। मैं छाँट-छाँट कर फल/सब्जी लूँगा, जब पैसे दूँगा तो ऐसे कैसे जल्दी-जल्दी ले लूँ। तो जैसे फल/सब्जी तुम छाँट-छाँट कर लेते हो, ऐसे ही सामने वाले ने तुमसे कोई बात कही तो आप उसी तरह जल्दी न करो, थोड़ा ठहरो ये सोचो कि मुझे सामने वाले की बात का उत्तर देना है या नहीं देना, मुझे उसकी बातों से राग बढ़ाना है या वैराग्य, क्रोध करना है या क्षमा करना है अथवा मुझे सामने वाले की बात ग्रहण करनी भी है या नहीं करनी। कचरा गाड़ी दिन में कई बार निकलती है मुझे उससे क्या प्रयोजन जैसे आया है वैसा वापस चला जाये। ऐसे ही यह सब सोचकर के अपनी कोई बात कहोगे तो उत्तर सही दे पाओगे और यदि तुमने जल्दबाजी कर दी, सड़े फल लेकर के आ गये, अच्छे-अच्छे फल वहीं छोड़ दिये तो नुकसान हो जायेगा। इसीलिये जल्दबाजी नहीं करना। भगवान् के पास बैठकर हम यही अभ्यास करने आये हैं कि हम अपनी बुद्धि का सदुपयोग कर सकें।

ज्ञान आपके पास है तो उसका उपयोग करो। गाड़ी पास में होते हुये भी दौड़ रहे हो, पसीना-पसीना हो रहे हो लोग यह देख तुम्हें मूर्ख ही कहेंगे। एक व्यक्ति कंधे पर गाड़ी रखकर ले जा रहा था, दूसरे व्यक्ति ने पूछा भाई बाइक खराब है क्या? बोला नहीं तेरी बुद्धि खराब है जो मुझे टोक रहा है। पुनः व्यक्ति बोला यदि तेरी

बुद्धि ठीक है, गाड़ी भी सही सलामत है तो बैठ क्यों नहीं जाता? वह बोला मेरी मर्जी, मेरी गाड़ी चाहे कुछ भी करूँ। महानुभाव! जिस तरह उस व्यक्ति को दुनिया मूर्ख कहेगी ऐसे ही दुनिया हमें भी मूर्ख कहेगी कि अपने ज्ञान के भार को, शब्दों के भार को 100 ग्रंथ कण्ठस्थ करके ढो रहे हैं अरे भाई! कभी-कभी उनका उपयोग भी कर लो। सोचो कि मुझे क्रोधादि कषायों को करना है या नहीं, मोह करना है या नहीं, इस तरह शब्दों के भार को क्यों ढो रहे हो।

तुमको वह व्यक्ति मूर्ख दिखाई देता है जो बाइक को कंधे पर रखकर ले जा रहा है किन्तु आचार्यों को जो शब्द भार ढो रहा है वह व्यक्ति मूर्ख दिखाई दे रहा है। जो शब्द तेरे लिये घोड़े का कार्य कर सकते हैं तुझे लक्ष्य तक पहुँचा सकते हैं, तेरा जीवन सुखी बना सकते हैं उनके भार से दबकर के दुःखी हो रहा है।

महानुभाव! जीवन में छोटे-छोटे प्रैक्टिकल करें, जैसे हम जल्दी से ही किसी की बात का जवाब नहीं देंगे, जल्दी से गुस्सा नहीं होंगे, जल्दी से मन को दुःखी न करेंगे संक्लेशित नहीं करेंगे। थोड़ा ठहरें और जब तक थोड़ा ठहरेंगे तब तक विवेक आ जायेगा, ज्ञान जाग्रत हो जायेगा फिर तुम वह गलत कार्य नहीं कर पाओगे इसीलिये हमें ठहरकर कार्य करना है। ठहरना हमारी आत्मा का स्वभाव है, चंचलता आत्मा का स्वभाव नहीं है। जब आत्मा ठहर जायेगी तब विवेक ज्ञान अपना काम करेगा और आपकी आत्मा में से सही यथार्थ उत्तर निकल कर आ जायेगा। वही मार्ग तुम्हारे लिये जो दुःख का कारण बन रहा था सुख का साधन बन जायेगा। आप सभी उसी का अभ्यास करें और अपने सिद्ध स्वभाव को प्राप्त करें इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।

श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।

''वीतरागी देव''

महानुभाव! जिनशासन की निर्मल एवं अक्षुण्ण परम्परा में अनेक आचार्यों के नाम बड़ी श्रद्धा-भक्ति और आदर के साथ स्मरण करने के योग्य हैं। जिन आचार्यों ने अपनी साधना के समय में से कुछ समय निकालकर जिनशासन के ऐसे स्तम्भ स्थापित किये जिन पर आज भी गगन को स्पर्श करने वाली ध्वजा फहरा रही है। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी, आचार्य गुणभद्र स्वामी, आचार्य उमास्वामी, आचार्य समन्तभद्र स्वामी, आचार्य गुणधर स्वामी, आचार्य धरसेन स्वामी, आचार्य पुष्पदंत-भूतबली स्वामी, आचार्य पूज्यपाद स्वामी, आचार्य अकलंक स्वामी, आचार्य जिनसेन स्वामी, आचार्य वीरसेन स्वामी, आचार्य शुभचन्द्रस्वामी, आचार्य मानतुंग स्वामी, आचार्य कुमुदचन्द्र स्वामी, आचार्य सकलकीर्ति जी महाराज इत्यादि आचार्यों ने जो जिनशासन की महती प्रभावना की, वह उनकी जिनशासन के लिये सहज कृपादृष्टि रही। वे चाहते तो अपना सम्पूर्ण समय अपनी आत्मा के कल्याण में लगा देते किन्तु उन्होंने पर कल्याणार्थ जिनशासन की निःसीम प्रभावना की।

स्वकल्याण के साथ ही परकल्याण

श्वाँस लेते-लेते भी कोई जी नहीं सकता, श्वाँस छोड़ते-छोड़ते भी कोई जी नहीं सकता। श्वाँस को लेना भी जरूरी है, श्वाँस को छोड़ना भी जरूरी है। किन्तु पहले श्वाँस को ग्रहण किया जाता है बाद में श्वाँस को छोड़ा जाता है। जिसने भी आत्मकल्याण के मार्ग को स्वीकार कर लिया है, अपनी आत्मा का कल्याण करने में जो समर्थ हो गया है उसी के माध्यम से पर का कल्याण संभव हो सकता है। जो व्यक्ति कुएँ के पाट पर बैठा हुआ है वही कुएँ में

गिरे व्यक्ति को निकालने में समर्थ हो सकता है जो स्वयं कुएँ में पड़ा हुआ है वह गिरे हुये को बाहर निकालने में कैसे समर्थ हो सकेगा।

संसार में जो व्यक्ति केवल पर-कल्याण करना चाहते हैं वे न पर-कल्याण कर पाते हैं न स्वकल्याण कर पाते हैं। जो केवल स्वकल्याण करना चाहते हैं, तो स्वकल्याण कभी अकेला नहीं होता। जैसे सिक्के के दो पहलू होते हैं एक आगे का, एक पीछे का ऐसे ही स्वकल्याण के साथ परकल्याण होता ही होता है। महानुभाव! यह छद्मस्थ दशा की बात है वीतरागी जिनेन्द्र भगवान् से स्वकल्याण भी होता है परकल्याण भी होता है यद्यपि वे परकल्याण करते नहीं फिर भी होता है। आचार्य, उपाध्याय, साधु परकल्याण करने की भावना मन में रखते हैं किन्तु वीतरागी जिनेन्द्र भगवान् पर-कल्याण की भावना नहीं रखते।

आचार्य भगवन् श्री समंतभद्र स्वामी जी ने भगवान् वासुपूज्य स्वामी की स्तुति करते हुये लिखा है-

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे,
न निंदया नाथ विवान्त-वैरे।
तथापि ते पुण्य गुणस्मृतिर्नः,
पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः॥

हे जिनेन्द्र देव! **न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे**-हे वीतरागी भगवन्! आपका राग नष्ट हो गया है, आप गतरागी हैं, विगत रागी हैं और जिसका राग नष्ट हो जाता है उसे कहने की आवश्यकता नहीं उसका द्वेष भी नष्ट हो जाता है क्योंकि द्वेष के नष्ट हुये बिना सम्पूर्ण राग नष्ट नहीं हो सकता। पहले द्वेष नष्ट हो जाता है, क्रोध कषाय द्वेष रूप है, मान कषाय द्वेष रूप है, मायाचारी व लोभ ये सब तीव्रता

को लिये हुये हैं। दशवें गुणस्थान के अंत में सूक्ष्म लोभ रहता है जो राग रूप है उसके पहले कृष्टिकरण के माध्यम से स्थूल परिवादन दृष्टि होती है फिर वह सूक्ष्म-सूक्ष्म कृष्टिकरण होते होते सम्पूर्ण द्रव्य जब सूक्ष्म लोभ में आ जाता है तब नष्ट होता है।

द्वेष से अधिक खतरनाक है राग

वैसे भी आप सभी लोग प्रैक्टिकली जानते हैं यदि किसी व्यक्ति का किसी से लड़ाई झगड़ा हो जाये और उसके परिणाम इतने खराब हो जायें कि मैं इसे छोडूँगा नहीं, जान से खत्म कर दूँगा। ऐसे परिणाम वाले व्यक्ति को भी तुम मौका पाकर थोड़ा समझाओगे कि क्यों तुम पाप का बंध करते हो, उसका पाप वह भोगेगा, वह जैसा करेगा वैसा फल पायेगा, तुम क्यों इतनी कषाय रखते हो। तुम्हारे समझाने पर वह एक बार समझ भी सकता है और बैर भाव को छोड़ भी सकता है किन्तु जो कहीं किसी में आसक्त हो गया है उसके राग के परिणाम को तोड़ पाना बड़ा कठिन है।

द्वेष जल्दी मिट जाता है, राग नहीं। यदि कहीं धूल पड़ी है उसे झाड़ू लगाकर साफ किया जा सकता है किन्तु कहीं चिकना पदार्थ गोंद आदि या तारकोल जैसा कुछ पड़ा है उसको छुटाना बड़ा कठिन है। द्वेष की पकड़ के सामने राग की पकड़ बहुत तीव्र होती है। इसीलिये यहाँ कहा कि हे भगवान्! आप तो वीतरागी हो। प्रायःकर सब शास्त्रों में भगवान् के लक्षणों का वर्णन करते हुए वीतरागता, हितोपदेशिता व सर्वज्ञता ये तीन लक्षण कहे जिसका राग बीत गया उसका द्वेष नष्ट हो गया।

वीतमोही कहने से बात आधी-अधूरी रह जाती है। अब कौन से मोह की बात कह रहे हैं? यदि दर्शनमोह की बात कर

रहे हैं तो वीतदर्शनमोह तो चौथे गुणस्थान में हो सकता है, चारित्र मोहनीय की बात कर रहे हैं तब तो बात समझ में आ रही है पर चारित्रमोह की बात आपने की तो फिर अकेला चारित्र वीतमोह ही क्यों कहा फिर ये क्यों नहीं कहते कि वे भगवान् तो घातिया कर्मों से ही रहित हो गये। क्योंकि जो सम्पूर्ण रूप से वीतमोही हो जाता है उसे अन्तर्मुहूर्त के अंदर सर्वज्ञ बनना ही बनना है। यह नियामक संबंध है। सूक्ष्म लोभ जाते ही क्षीणमोह नामक बारहवाँ गुणस्थान हो गया और 12वें गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त से ज्यादा कभी न था, न है, न कभी हो सकेगा। 12वें गुणस्थान से कभी गिरने की संभावना भी नहीं है, ज्यादा ठहरने के चांस भी नहीं हैं। नियम से 13वें गुणस्थान में ही जायेगा, ऐसा भी नहीं कि 14वें में चला जायेगा, 12वें से 13वें में ही जायेगा और कोई गति नहीं है।

तो यहाँ कहा हे वीतरागी जिनेन्द्र देव! आपको अपनी पूजा से कोई भी प्रयोजन नहीं है। क्यों? क्योंकि प्रयोजन तो उसे होता है जिसे अपने प्रयोजन के प्रति राग हो। जिसके मन में राग नहीं है तो कोई प्रयोजन नहीं है। चाहे बैर भाव का प्रयोजन है, चाहे राग की पुष्टि का प्रयोजन है, चाहे लेन-देन का प्रयोजन है, कोई भी चीज है जब तक राग है तब तक कोई न कोई प्रयोजन है चाहे अच्छा हो या बुरा हो। जब राग ही नहीं है तो काहे का प्रयोजन। फिर तो जो हो रहा है सो हो रहा है, वे कुछ कर ही नहीं रहे।

ध्यानावस्था कहाँ?

वीतरागी कुछ नहीं करते, उन्हें जो करना था छद्मस्थ अवस्था में कर लिया, वे तो कृत्य-कृत्य हो गये। अब वो अरिहन्त अवस्था में चार अघातिया कर्म नष्ट करेंगे, उपचार से, किंतु वे कर्म

अपने आप नष्ट हो जायेंगे वे कुछ नहीं करेंगे। जो शुक्लध्यान तीसरा, चौथा 13वें-14वें गुणस्थान में है उस ध्यान लगाने के लिये ऐसा नहीं कि वे पद्मासन लगाकर बैठेंगे, आँख बंद करके कि मैं इन कर्मों को नष्ट करूँगा, नहीं, ऐसा कुछ नहीं करेंगे। अयोग केवली अवस्था अ इ उ ऋ लृ ये पाँच ह्रस्व बीजाक्षर बोलने में जितना समय है इतने ही समय का चौथा शुक्ल ध्यान है।

आचार्य अकलंक देव स्वामी ने तो यहाँ तक कह दिया कि 13वें-14वें गुणस्थान में तो ध्यान है ही नहीं। अरे! ये बात तो बड़ी गड़बड़ सी लगी। क्यों नहीं है ध्यान? आश्चर्य है ऐसा कैसे कह दिया। उन्होंने कहा ध्यान की परिभाषा क्या है-

उत्तम संहननस्यैकाग्र चिन्ता निरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात्।

उत्तम संहनन वाला व्यक्ति अपने चित्त को एकाग्र करता है वह ध्यान कहलाता है। 13वें, 14वें गुणस्थान में जब चित्त ही नहीं बचा, क्षायोपशमिक भाव ही नहीं बचा। 13वें गुणस्थान वाले को क्या कहेंगे संज्ञी कि असंज्ञी? संज्ञी कहेंगे तो, संज्ञी तो कहते हैं जिसका मन हो पर उनके तो मन ही नहीं है। मन क्षायोपशमिक भाव है और उनका क्षायिक भाव है तो संज्ञी कैसे कहोगे। और असंज्ञी कह नहीं सकते। इसलिये उन्हें कहा नो संज्ञी-नो असंज्ञी। संज्ञी इसीलिये नहीं हैं क्योंकि मन का कार्य नहीं है, असंज्ञी इसीलिये नहीं हैं कि यदि असंज्ञी होते तो बढ़कर यहाँ तक कैसे आते इसलिये ना संज्ञी हैं-ना असंज्ञी हैं। द्रव्य मन की रचना है ऐसे मान लो लेकिन भाव मन का कार्य नहीं है इसीलिये ना संज्ञी-ना असंज्ञी। आप तो चित्त की स्थिरता को ध्यान कह रहे हैं और चित्त ही नहीं है तो स्थिर किसे करोगे, इसलिये आगे के 13वें, 14वें गुणस्थान में उपचार से ध्यान कहा।

अरिहंत बनने तक का है पुरुषार्थ-

ध्यान तो है किंतु वो ध्यान उपचार से है। क्योंकि उसका कार्य देखा जा रहा है जब कार्य देखा जा रहा है तो कारण भी नियम से है किन्तु एक जगह कारण जुटाना पड़ता है और दूसरी जगह कारण अपने आप आ जाता है। कई बार एकान्तवादी कहते हैं-अरे कारण को जुटाना नहीं है अपने आप आ जाता है। भैया! किनके लिये आ जाता है? वीतारागी के लिये और जब तक अरिहंत नहीं बने हैं तब तक कारण उपस्थित करना पड़ता है। सिद्ध अवस्था सहज साध्य है सिद्ध अवस्था कभी पुरुषार्थ से प्राप्त नहीं होती। अरिहंत अवस्था, आचार्य अवस्था, साधु की अवस्था, श्रावक की अवस्था पुरुषार्थ साध्य है। बिना पुरुषार्थ किये, बिना यत्न किये, बिना साधना-तपस्या किये अरिहंत, आचार्य, साधु, श्रावक नहीं बन सकते किन्तु बिना उपाय किये सिद्ध बन सकते हैं।

पहले तुम अपने पुरुषार्थ के माध्यम से अच्छे श्रावक बन जाओ, उत्तम-श्रेष्ठ श्रावक बन जाओ फिर साधु बनो, उपाध्याय बनो, आचार्य बनो या चार घातिया कर्म नष्ट करके साधना से अरिहंत बन जाओ ये पुरुषार्थ साध्य है। अब कोई भी अरिहंत चाहे मैं जल्दी से सिद्ध बन जाऊँ, तो नहीं बन सकते। जितना आयु कर्म है उतना आयु कर्म तो भोगना ही पड़ेगा और चार अघातिया कर्म अयोग केवली दशा में नष्ट होंगे उसके पहले वे स्वयं भी नष्ट नहीं कर सकते। तो सिद्ध अवस्था सहज साध्य है। उस सिद्ध अवस्था के लिए अघातिया कर्मों को नष्ट करने वाला ध्यान है वह सहज ध्यान है उस कारण को अरिहंतों को जुटाना नहीं पड़ता है वह कारण अपने आप उपस्थित हो जाता है।

जैसे बारिश हुयी हवा चली, हवा में ठंडक कैसे आयी? पानी ने कोई प्रयास किया था क्या? या हवा ने प्रयास किया? नहीं, वह तो पानी बरसा हवा वहाँ से बही तो अपने आप ठंडी हो गयी उसे कुछ करना नहीं पड़ा। वह सहज अवस्था है। आप सो रहे हैं श्वाँस आ रही है जा रही है सहज क्रिया है न आप जबरदस्ती ले रहे हैं न छोड़ रहे हैं। तो कुछ अवस्था बड़ी सहज होती हैं उनको करना नहीं पड़ता। किंतु जहाँ आवश्यकता है कुछ करने की तो वहाँ तो करना ही पड़ेगा।

महानुभाव! भगवान् तो वीतरागी हैं उन्हें तो यह भी विकल्प नहीं कि मैं चार अघातिया कर्मों को नष्ट करके सिद्ध बन जाऊँ। यदि ये विकल्प किया जाये तो वे वीतरागी नहीं कहलायेंगे, उनके मन में कोई भी विकल्प शेष नहीं है।

तो यहाँ कहा-हे भगवान्! आपको किसी से कोई प्रयोजन नहीं है। किसी की पूजा भक्ति से भी तुम्हें प्रयोजन नहीं है, चाहे कोई तुम्हें चावल चढ़ा रहा है या रत्न या हीरे-मोती। साष्टांग नमस्कार कर रहा है या गवासन से अथवा खड़े-खड़े कर रहा है आपको इन सब से कोई मतलब नहीं है। क्योंकि आप वीतरागी हैं। जब साधु भी बैठ जाता है वीतराग दशा में तो उसे भी नहीं मालूम कौन आया, कौन गया। उसे जो आनंद आ रहा है उस आनंद में कोई विकल्प नहीं आ रहा। फिर आप तो भगवान् हो, राग को नष्ट ही कर चुके हैं। इस साधु ने तो राग थोड़ी देर के लिये दबाया है।

जैसा करोगे, वैसा भरोगे

अगली बात कही **'न निन्दया नाथ विवान्तवैरे'** हे भगवान्! ऐसा भी नहीं है जैसा कि वैदिक परम्परा में माना जाता है

कि यदि तुमने भगवान् के प्रति अविनय की तो त्रिशूल लेकर तुम्हारा संहार कर देंगे। और तुमने पैर पकड़ के भगवान् को मना लिया तो तुम्हारे समस्त पापों को नष्ट कर देंगे, तथास्तु कह कर नरक से स्वर्ग में पहुँचा देंगे। जैन दर्शन में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। जिनशासन इस प्रकार की व्यवस्था का पोषक न कभी था, न है, न होगा। जिनशासन कहता है जैसा करोगे वही आप भरोगे। तुम्हारे कर्म को अन्यथा करने में तीर्थंकर, सिद्ध कोई भी समर्थ नहीं है केवल तुम ही समर्थ हो। अपने पुण्य से पाप को काटो और पुण्य का दुरुपयोग करके पाप को बाँधो इतना कर सकते हो।

यहाँ कह रहे हैं हे प्रभु! किसी की निंदा-स्तुति से आप को कोई भी फर्क पड़ने वाला नहीं है। आप तो शांति से स्वयं में लीन हो। आप तो पाषाण/धातु की मूर्ति की तरह हो उन्हें किसी से कोई प्रयोजन नहीं। तुम चाहे कुछ भी करो, किंतु एक बात अवश्य है आगे कह दिया-

तथापि ते पुण्य गुणस्मृतिर्नः।
पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः॥

तथापि-फिर भी आपके पुण्य रूप गुणों का जो स्मरण करता है, **पुनातुचित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः** स्मरण करने मात्र से उसका चित्त पवित्र हो जाता है। सूर्य की किरण निकल कर आयी, जल पर पड़ी, किरण गीली नहीं हुयी किन्तु जल सूर्य की किरण से गर्म हो गया उस पर प्रभाव आया। जल थाली में रखा था या नहीं इसका प्रभाव सूर्य पर नहीं पड़ रहा किन्तु सूर्य की किरण का प्रभाव उस पदार्थ पर पड़ रहा है जिस पर सूर्य की किरण पड़ रही है। कमल पर पड़ी तो सम्पूर्ण कमल खिलने लगे, पक्षी चहकने लगे, सरिताओं का जल भी लगता है विशेष गति से बहने लगा। मनुष्यों के चित्त खिलने लगे, आनंद

आने लगा सूर्य के उदय होते ही सब मंगल ही मंगल होने लगा पर सूर्य को कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

पुण्य के हेतु अरिहंत

सूर्य का उदय वहाँ भी हो रहा है जहाँ मंगल हो रहा है, वहाँ पर भी हो रहा है जहाँ युद्ध हो रहा है और वहाँ पर भी हो रहा है जहाँ पर मातम छाया हुआ है। उसे कोई फर्क नहीं पड़ रहा। ऐसे ही हे वीतरागी भगवन्! आप तो समतास्वभावी हो किन्तु आपके इन गुणों का बड़ा प्रभाव है, नदी बहकर के जा रही है चाहे तुमने फूल डाल दिया तब भी कोई असर नहीं, कचड़ा डाल दिया तब भी कोई असर नहीं वह नदी अपनी धारा में बह रही है। ऐसे ही अरिहंत भगवान् वीतरागी प्रभु अपनी ही धारा में प्रवाहमान हैं, गतिशील हैं उन्हें बाह्य पदार्थों से प्रभाव नहीं पड़ता। विषापहार स्तोत्र में लिखा है **'अपुण्यपापं परपुण्य हेतुं'** भगवान् कैसे हैं? अपुण्य-अपाप। आप पुण्य-पाप से रहित हैं किंतु दूसरों के लिये पुण्य का कारण हैं। हमारे लिये पुण्य का कारण हैं इसीलिये हम सभी आपके चरणों में आकर के बैठते हैं तदाकार-अतदाकार रूप स्थापना करते हैं, पूजा, भक्ति, स्तुति करते हैं। वे भव्यजीवों के लिये पुण्य का आलम्बन हैं।

यहाँ पर भी आचार्य समन्तभद्र स्वामी जी कह रहे हैं आप सबके चित्त को पवित्र करते हैं मेरा चित्त भी पवित्र करें। बस! यही मैं चाहता हूँ। आप तो गतरागी हैं, वीतरागी हैं, गतद्वेषी हैं, गतमोही हैं, घातिया आदि कर्मों से रहित हैं इसीलिये मैं आपके चरणों में इसी पवित्र सिद्ध पद पाने की भावना से आया हूँ।

सिद्धिः स्वात्मप्रदेशे

ये भावना जब तुम्हारे मन में पैदा होगी, तब सिद्धत्व की दूरी चार अंगुल की भी न रहेगी। सिद्धत्व कितना दूर है? आप कहते

हो सात राजू। अरे सिद्धत्व किंचित् भी दूर नहीं है। चार अंगुल की भी दूरी नहीं, सिद्धत्व वहाँ नहीं है सिद्धत्व तो यहाँ है। जब अरिहंत भगवान् चार अघातिया कर्मों से मुक्त होते हैं तो उनकी आत्मा वहाँ जाकर सिद्ध नहीं बनती है उनकी आत्मा सिद्ध यहीं हो जाती है। ऐसा नहीं है कि सिद्धालय में पहुँचकर वे सिद्ध कहलाते हैं। सिद्ध वे कहलाते हैं जो कर्मों से रहित हो जाते हैं और कर्मों से रहित कहाँ पर होते हैं? भगवान् आदिनाथ का निर्वाण कहाँ से हुआ था? सिद्धालय से हुआ था या कैलाश पर्वत से। किसी भी तीर्थंकर का निर्वाण जहाँ वे बैठे थे वहीं आत्मा में ही आत्मा मुक्त हुयी थी, सभी कर्मों को नष्ट कर दिया वहीं आत्मा सिद्ध हो गयी। सिद्धालय में जाकर सिद्ध नहीं हुयी थी सिद्धालय में जाकर तो ठहरते हैं। विद्यार्थी स्कूल में पढ़ रहा है तो वह कहाँ पास होगा। उसी स्कूल में जहाँ परीक्षा दी है वहीं पास होगा। ऐसे ही जहाँ उन्होंने कर्मों की होली जला दी वहीं वे सिद्ध बन गये।

महानुभाव! हम भी शक्तिरूपेण सिद्ध हैं। वहाँ जाकर न बनेंगे, यहीं पर सिद्ध हैं बस कर्मों का आवरण हटा और हम सिद्ध हो गये। मूँगफली का दाना निकालने के लिये उसका आवरण तोड़ दो तो दाना बाहर निकलकर आ जायेगा ऐसे ही कर्मों के आवरण को हम तोड़ दें तो हमारी आत्मा सिद्धात्मा हो जायेगी, निकलकर बाहर आ जायेगी। कर्मों का आवरण यहीं टूटेगा हम निष्कृत/निष्कर्म अवस्था को यहीं प्राप्त होंगे। हम यही भावना भायें कि हम भी नैष्कर्म अवस्था को प्राप्त हों। हम भी असिद्धत्व को छोड़कर सिद्धत्व भाव को प्राप्त करें वह तभी संभव है जब सिद्धों की उपासना करें, सिद्धों का ध्यान लगायें, सिद्धों का चिंतवन करें। उसे करते-करते अपने स्वरूप का भान होगा अपने स्वरूप को प्राप्त करने की प्यास जगेगी और तब हम अपना कदम बढ़ायेंगे।

पानी तो हमारे आस-पास भरा पड़ा है। मगरमच्छ समुद्र में डूबा हुआ है किन्तु उसे अपनी प्यास का अहसास नहीं है और यह विश्वास नहीं है कि इस पानी से मेरी प्यास बुझेगी। हमारा सिद्धत्व हमारे अंदर ही है हम जान नहीं पा रहे कैसे प्रगट करें। बस सिद्धत्व को जान लोगे तो सिद्ध बन जाओगे, सिद्धत्व का अनुभव ही सिद्ध बनाने का कारण है। आप सभी लोग लौकिक कार्यों को तो सिद्ध करते ही हैं अब केवल एक सिद्धि कर लें **सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः**। अपनी आत्मा की सिद्धि कर लें फिर संसार की किसी भी सिद्धि-प्रसिद्धि की आवश्यकता नहीं रहेगी। इसी भावना के साथ कि आप सभी लोग अपनी आत्मोपलब्धि में समर्थ हों ऐसी शुभ भावना आप सभी के प्रति भाते हैं, इसी के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देते हैं।

॥श्री शांतिनाथ भगवान् की जय॥

''आत्मस्वरूप''

महानुभाव! सिद्धों की उपासना वही भव्य जीव कर पाता है, जिसे निकट भविष्य में सिद्ध बनना होता है, जिसे आत्मा-अनात्मा का भेद विज्ञान हो गया हो। साकार परमात्मा की उपासना तो अभव्य जीव भी कर सकता है, साकार परमात्मा की पूजा तो किसी कांक्षा-वांछा-निदान से मिथ्यादृष्टि भी कर सकता है किन्तु निराकार परमात्मा की उपासना सिर्फ और सिर्फ सम्यग्दृष्टि ही भाव सहित कर पाते हैं।

महानुभाव! आत्मा का स्वरूप ऐसा है जो इन्द्रियों के द्वारा अग्राह्य है। कई बार व्यक्ति पूछता है आत्मा कैसी है, परमात्मा कैसा है, कई हिन्दु वैदिक परम्परा को मानने वाले साधु पूछते हैं महाराज साहब आपका परमात्मा से साक्षात्कार हो गया? आपको भगवान् मिल गये, आपने भगवान् के दर्शन कर लिये? हाँ भाई! भगवान् से साक्षात्कार हो गया, मिल गये-दर्शन कर लिये। कैसा है उनका स्वरूप? उनका स्वरूप जैसा हमने माना है वैसा है। आपने कैसा माना है? जैसा हमने माना है वैसा हमारे लिये ही उपयोगी है, तुम्हारे लिये नहीं, क्योंकि हमारा अनुभव, हमारी स्मृति, हमारा आनंद हमारे ऊपर ही निर्भर है उसे तुम ग्रहण नहीं कर पाओगे और हम आत्मा की बात को इन्द्रियों से व्यक्त भी नहीं कर पायेंगे। और तुम हमारी बात को, भावनाओं को इन्द्रियों से ग्रहण भी नहीं कर पाओगे। यदि बिना बोले तुम सुन सको तो सुन लो, कान बंद करके ग्रहण करो, आँख बंद करके ग्रहण करो तब तो समझ में आ सकता है किन्तु तुम कहो कि मैं आत्मा के बारे में कान खोलकर सुनना चाहता हूँ तो वह सुनने में नहीं आयेगा।

अरस-अरूपी आत्मा

आत्मा-परमात्मा का स्वरूप आँखों पर चश्मा लगाकर

देखोगे तो दिखेगा नहीं। आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी ने आत्मा का स्वरूप कहा-

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिदिट्ठ-संठाणं॥5॥

कैसा है आत्मा-**'अरस'**-कोई आपसे कहे आत्मा नाम की कोई चीज है? हाँ है। बताओ उसका स्वाद कैसा है? उसका स्वाद शब्दों में नहीं कहा जा सकता। तो नहीं कहो, चखा ही दो। जिह्वा से उसका स्वाद भी नहीं ले सकते। क्योंकि जिह्वा के माध्यम से पौद्गलिक पदार्थों का स्वाद लिया जा सकता है जो अपौद्गलिक है उसका स्वाद जिह्वा से नहीं ले सकते। अरे भाई! कुछ तो स्वाद होगा खट्टा-मीठा-चरपरा-कसायला। लोग तो कहते हैं आत्मा का रसास्वादन करने में बहुत आनंद आता है। उनसे पूछो भाई! कैसा आनंद आ रहा है? मीठा-मीठा आनंद आ रहा है। तो वे सभी मिथ्याभाषी हैं जो कहते हैं मीठा-मीठा आनंद आ रहा है। वे भी मिथ्याभाषी हैं जो कड़वा-खट्टा-चरपरा-कसायला आदि स्वाद कहते हैं। क्योंकि आनंद में कोई स्वाद नहीं है। स्वाद रसना इन्द्रिय का विषय है।

'अरूप'-आत्मा कैसी है? तो उत्तर मिलता है बिल्कुल धवल प्रकाशपुंज है। जिन्होंने ऐसा कहा है वे भी 100% झूठ बोल रहे हैं। क्योंकि आत्मा रूप से रहित है। उसमें रूप ही नहीं है। यदि उसमें रूप की कल्पना कर रहे हो, उसे आँखों से देखने की चेष्टा कर रहे हो तो तुम कहीं न कहीं पुद्गल को पकड़ के बैठ गये, पुद्गल का कोई सुधरा हुआ रूप आपके मन में आ गया है। आपने मन-गढ़ंत-कल्पना कर ली जैसे ट्यूबलाइट-बल्ब जैसा बहुत सारा प्रकाश इकट्ठा कर लिया और आत्मा की आकृति बना ली। नहीं! प्रकाश भी पौद्गलिक है।

उस आत्मा का कोई भी रूप-रंग नहीं है। जब आत्मा में परमाणु मात्र ही नहीं है तो आत्मा का रंग दोगे किससे। धवल शब्द कहना भी आत्मा के लिये मिथ्या सिद्ध होगा क्योंकि वह धवलता भी पुद्गल का गुण है आत्मा का नहीं।

गंधहीन व अव्यक्त

'अगंधं'-आत्मा में कोई गंध नहीं है। किसी भी अच्छी-बुरी प्रकार की गंध नहीं है। सुगंध के भी अनंत भेद हैं, दुर्गंध के भी अनंत भेद हैं किन्तु आत्मा में कोई गंध नहीं है।

'अव्वत्तं'-ये तीन चीज तो समझ में आती हैं कि आत्मा अरस है, अरूप है, अगंध है। **'अव्वत्तं'** शब्द बड़ा अच्छा शब्द है आत्मा किसी भी प्रकार से छद्मस्थों के द्वारा, वीतरागियों के द्वारा, सर्वज्ञों के द्वारा दूसरों के सामने व्यक्त नहीं की जा सकती वह अव्यक्त है। जो व्यक्त किया जाता है वह सिर्फ शाब्दिक वचनों में ही प्रस्तुत किया जाता है आत्मा को व्यक्त नहीं किया जा सकता है। केवल इतना समझ लो, शब्दों से हम भी आपको आत्मा के बारे में बता रहे हैं, आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी ने बताया, यह तो ऐसा मान लो जैसे साइनबोर्ड। साइनबोर्ड पर Arrow बना हुआ है। दिल्ली इतनी दूर है, कलकत्ता इतनी दूर है। यदि उस साइनबोर्ड को पकड़कर बैठ जाओ तो दिल्ली-कलकत्ता न पहुँच सकोगे। वे साइनबोर्ड तो मात्र माध्यम हैं। शब्द भी उसी साइनबोर्ड की तरह काम करने वाले हैं। चन्द्रमा कहाँ है थाली में पानी भरा है उसे देख बालक कह रहा है चन्द्रमा थाली में है, कोई बड़ा व्यक्ति है वह कहता है रे मूर्ख! ये तो थाली में पानी है चन्द्रमा तो वो सुदूर है और अँगुली दिखाता है। अगले व्यक्ति ने उसकी अँगुली पकड़ ली हाँ ये चन्द्रमा है।

महानुभाव! चन्द्रमा न तो थाली में है, न अँगुली में दोनों ही मिथ्या संकेत कर रहे हैं, चन्द्रमा जहाँ है वहाँ है। ये सब केवल बच्चों को बहलाने वाली कल्पनायें हैं आत्मा इन सबसे भी परे है। आत्मा वह है जिसे शब्दों से व्यक्त नहीं किया जा सकता और जो शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है वह आत्मा नहीं। आत्मा-शरीर मिश्रित किसी दशा के बारे में आपने ज्ञान कर लिया होगा वही समझा दिया होगा। आत्मा व्यक्त नहीं हो सकती वह तो अगम्य है। रहीमदास जी ने कहा-

रहिमन बात अगम्य की, कहन सुनन की नाहिं।
जानत हैं वे कहत नहीं, कहत वे जानत नाहिं॥

आत्मा की बात तो ऐसी है जो जानता है तो कह नहीं सकता और कहता है तो समझो अभी जान नहीं रहा। आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी ने शब्द कहा **'अव्वत्तं'**। जब उन्होंने कह दिया कि अव्यक्त है तो हमारी क्या सामर्थ्य है कि हम व्यक्त करके बता दें। वे इतने आध्यात्मिक रसिक, आत्मा की गहराई में इतने गहरे डूबे कि 2000 वर्ष में आज तक ऐसा कोई मुनि नहीं आया जिसने अध्यात्म की गहराई को छुआ हो और छूकर के वह अनुभव प्राप्त किया हो। ऐसा लोगों का मानना है। किन्तु ऐसा आध्यात्मिक रसिक जो वहाँ तक पहुँच गया उसके बाद उनसे पूछा-महाराज! बताईये आपने आत्मा के बारे में क्या जाना, वे बोले कह नहीं सकते।

आत्मा का स्पर्श

आपने खूब चखा-खूब चखा थोड़ा स्वाद तो बता दो, नहीं उसका स्वाद भी नहीं कह सकते। रंग ही बता दीजिये। आँख बंद कर खूब देखते रहे-देखते रहे किन्तु रंग नहीं देख पाये। कहते

हैं आत्मा की ध्वनि सुनो-तो आपने तो सुनी होगी बताईये वह कैसी है? नहीं कह सकते। आत्मा तो इन्द्रिय से अतीत है। आत्मा का स्पर्श कैसा है? आत्मा शरीर के साथ ही है जन्म के पहले से, गर्भ में जब शरीर बनना प्रारंभ हुआ था तब से ही आत्मा-शरीर दोनों एकमेक हो रहे हैं फिर भी आत्मा का स्पर्श कोई भी ज्ञान से कहकर बता नहीं सकता। आत्मा हल्की-भारी-रूखी-चिकनी-कड़ी नरम कैसी है नहीं बताया जा सकता। वह आत्मा स्पर्श से रहित है।

देखो-अनादिकाल से आत्मा और कर्म एक साथ हैं। उनका संबंध दूध-पानी की तरह से है किन्तु ये ध्यान रखना कि आज तक किसी भी आत्मा ने कर्म को छुआ नहीं है दूध-पानी का संबंध है फिर भी न आत्मा ने कर्म को छुआ, न कर्म ने आत्मा को छुआ। आप कहेंगे महाराज आपकी बात तो स्ववचन विरोधी जैसी लग रही है कि दूध-पानी जैसा होने के बावजूद भी छुआ नहीं तो आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी ने कहा-

अण्णोण्णं पविसंता दिंता ओगासमण्णमण्णस्स।
मेलंता वि य णिच्चं सग सगभावं ण विजहंति॥

एक दूसरे में प्रवेश करते हैं, अन्योन्य को अवकाश देते हैं, परस्पर मिल जाते हैं तथापि सदा अपने-अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते।

ऐसा कैसे हो सकता है? दूध ने पानी को छुआ है, पानी ने दूध को। पानी जब दूध के साथ मिल गया आपने दूध को गर्म भी कर लिया तो पानी जल गया फिर दूध-दूध रह गया, मावा बन गया, उसको भी दुबारा पानी में डाल दोगे तो दूध जैसा बना दोगे किन्तु आत्मा का स्वभाव दूध जैसा नहीं है। आत्मा दूध नहीं है। दूध के माफिक कहो

तो संसारी आत्मा है, आत्मा तो सिर्फ आत्मा ही आत्मा है वह दूध नहीं है वह घी के समान है। दूध में से घी निकालना थोड़ा मुश्किल पड़ता है। पहले दूध को गर्म करो फिर जमाओ, मथानी से चलाओ, त्याग-वैराग्य की रस्सी को बाँधो उस मन की मथानी में, उसके मथने से नवनीत निकलेगा। वह नवनीत अभी थोड़ा मट्ठा से ऊपर है थोड़ा उसमें डूब रहा है थोड़ा उसमें पानी है, पुनः पानी निकल गया शुद्ध घी बन गया। फिर तो सिर पर जाकर बैठ जाता है सिद्धों की तरह से लोकाग्र पर पुनः कभी डूबता नहीं।

वह जल नीचे रहता है घी स्वीकार नहीं करता। जल घी को स्वीकार नहीं करता, घी जल को स्वीकार नहीं करता। तो अभी दूध में घी विद्यमान है, घी ने जल को नहीं छुआ, जल ने घी को नहीं छुआ। क्योंकि घी वहाँ पर है ही नहीं अभी तो उसकी पर्याय दूध है। आत्मा की पर्याय अभी तो दूध रूप है संसार में है। आत्मा, मुक्त आत्मा तब कहलायेगी जब कर्मों से मुक्त हो जायेगी। फिर वह कर्मों को छूयेगी नहीं। जब तक आत्मा कर्मों से मुक्त नहीं हुयी तब तक वह संसारी जीव है।

महानुभाव! आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी आगे कह रहे हैं **चेदणा गुणमसद्दं**-वह आत्मा कैसी है? चैतन्य गुण से युक्त है। चैतन्य गुण के दो भेद कर दिये ज्ञान चेतना, दर्शन चेतना। चैतन्य गुण कैसा है-ऐसा समझो जैसे घी में चिकनाई होती है। यदि आपसे पूछा जाये कि घी को अलग करके चिकनाई नाम की चीज क्या है? यदि घी को अलग करके चिकनाई को तुम पहचान सको, अनुभव कर सको तो संभव है तुम आत्मा के चैतन्यगुण का भी अनुभव कर सकोगे। किन्तु जो बिना घी के चिकनाई का अनुभव नहीं कर सकता

वह बिना आत्मा के चैतन्यगुण का भी अनुभव नहीं कर सकता। जो अग्नि के बिना भी ऊष्णता का अनुभव कर सकता है वह व्यक्ति आत्मा के किसी भी गुण का अलग-अलग व समग्र अनुभव कर सकता है।

आगे कह रहे हैं **'असद्दं'**-आत्मा शब्द से रहित है। शब्दों में बाँधी नहीं जा सकती। जैसे एक लम्बी रस्सी लेकर के आप आकाश को नहीं बाँध सकते, लकड़ियों के ढेर को तो बाँध सकते हो। तो जैसे कोई व्यक्ति रस्सी से आकाश को बाँधने की चेष्टा कर रहा है ऐसा ही समझो कि शब्दों के माध्यम से आत्मा के स्वरूप का व्याख्यान किया जा रहा है। शब्दों में आत्मा का स्वरूप कैसे आयेगा। शब्दों में केवल शब्द ही कहे जा सकते हैं। शब्दों में शब्द ही बाँधे जा सकते हैं आत्मा को नहीं बाँधा जा सकता।

आत्मा का चिह्न

आगे कहा-**'जाण अलिंगग्गहणं'**-आत्मा कैसी है इसे जानो। लिंग माने चिह्न, अलिंग माने चिह्न रहित। इस आत्मा का कोई चिह्न नहीं है जो जान लें। ये तो बच्चों को समझाने के लिये कह दिया इन्द्रियों के माध्यम से आत्मा के सूक्ष्म अस्तित्व की पहचान होती है। जो आत्मा के सूक्ष्म अस्तित्व का बोध करायें वे इन्द्रियाँ कहलाती हैं किन्तु जिसके पास इन्द्रियाँ नहीं हों तो क्या वे जीव नहीं हैं, आत्मा नहीं है। विग्रहगति में जा रहा है उस आत्मा का क्या चिह्न है। इन्द्रियाँ तो संसारी प्राणी के अशुद्ध जीव की बात कह रहे हैं किन्तु आत्मा का चिह्न क्या है? सिद्धों का चिह्न क्या है यदि तुम्हारे सामने सिद्धात्मा आ जायें तो तुम उन्हें कैसे पहचानोगे? उनका तो कोई लिंग ही नहीं है, पहचान ही नहीं है।

जिसकी कोई पहचान नहीं है उसे जानो। जिसकी पहचान है उसे तो दुनिया जान सकती है। शरीर को पहचान से बता सकते हो किन्तु आत्मा का कोई चिह्न नहीं है। फिर भी आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं उसे जानो। कैसे जानो? ग्रहण करके। ग्रहण कैसे करना है। संसार की वस्तु तो आप पकड़ते हो, पकड़ लिया तो जान नहीं सकते। उस आत्मा को पकड़ना नहीं है ग्रहण करना है अर्थात् आत्मा का आत्मा में लीन होकर के अनुभव करना है वह आत्मा का ग्रहण करना है।

आत्मा की आकृति

वह जीवात्मा कैसा है? अनिर्दिष्ट जिसका कोई एक निश्चित आकार नहीं है। आपसे पूछा आत्मा का आकार कैसा है? जिस शरीर में आत्मा विद्यमान है वैसा ही आकार आपने कह दिया, शरीर भी सबका अलग-अलग प्रकार का है। चींटी का अलग है, हाथी का अलग है, पेड़ का शरीर अलग है, पानी की बूंद का अलग है, अग्नि का शरीर अलग है। सबके अलग हैं। तो आत्मा शरीर के बाहर तो है नहीं उसकी आत्मा उसी के शरीर में है, तो आत्मा का आकार भी उसी प्रकार का हो गया। इसीलिए यही कहेंगे कि आत्मा का कोई निश्चित निर्दिष्ट आकार नहीं है।

आत्मा है क्या चीज? जो निकल जाती है उसके निकल जाने पर शरीर मुर्दा हो जाता है, काम नहीं करता, वह देखने में भी नहीं आता। इसके लिये एक लौकिक उदाहरण से समझाते हैं-

जैसे सभी इलैक्ट्रॉनिक आइटम्स ज्यों कि त्यों हैं, लाइट आयी सभी ने अपना कार्य करना प्रारंभ कर दिया, चली गयी तो काम बंद हो गया। उसके चलते आप कहते हैं लाइट आ गयी किन्तु

वैसे लाइट आपके देखने में कहाँ से आयेगी? ये लाइट क्या है। लाइट स्थूल है वह भी देखने में पकड़ने में नहीं आती फिर वह आत्मा देखने-पकड़ने में कैसे आये। वैक्रियक शरीर स्थूल है फिर भी दीवार से पार हो सकता है, कहीं से भी पार हो सकता है, वह पकड़ में नहीं आता है। सूर्य की किरणें काँच को भी पार कर बाहर आ जाती हैं काँच में छेद नहीं हुआ यह तो बहुत ही स्थूल है। किन्तु आत्मा तो बहुत ही सूक्ष्म है। अति सूक्ष्म तो परमाणु होता है किन्तु आत्मा को सूक्ष्म भी नहीं कह सकते वह भी पुद्गल का भेद है। आत्मा उससे भी परे है। अति सूक्ष्म से भी परे अति स्थूल से भी परे। ऐसी आत्मा का कोई आकार नहीं कह सकते।

सिद्धों का आकार हमने निश्चित ऐसे मान लिया है जब उन्होंने अपने अंतिम शरीर को छोड़ा था, तब आत्मा के प्रदेश निकल गये, फिर उस आत्मा के प्रदेश में विकृति आने का कोई कारण नहीं बचा इसीलिये उसी आकार में हम सिद्धों की उपासना करते हैं, ध्यान लगाते हैं, चिंतन करते हैं किन्तु वास्तव में उस आत्मा का स्वरूप कैसा है तो आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने तो यही कहा वह तो अनुभवगम्य है। आत्मा का स्वरूप इतना ही मानकर चलें कि आत्मा देखने की नहीं, सुनने की नहीं, चखने की नहीं, समझने की नहीं है। हम जो ध्यान करते हैं वह तो बहुत स्थूल है। योगी भी जब तक ध्यान लगा रहे हैं तब तक वह चिंतन है, भावना है, अनुप्रेक्षा है। तब तक वह ध्यान नहीं है उपचार से कहा जाता है चौथे गुणस्थान से छठवें गुणस्थान तक धर्मध्यान होता है किन्तु वास्तव में निर्विकल्प अवस्था सप्तम गुणस्थान से पहले नहीं आती। और उस ध्यान में जो आता है वह कहने में नहीं आता, जो कहने में आ रहा है वह ध्यान नहीं रहा।

ध्यान कहा नहीं जाता, ध्यान किया नहीं जाता, ध्यान होता है। ध्यान करने के लिये समय निश्चित नहीं है। जैसे एक बालक से कह दो जिसकी माँ नानी के यहाँ गयी है, उसे छोड़ गयी है फिर उस बालक से कहना बेटा! सुबह 6 से 7 बजे तक ही तुम अपनी माँ की याद करना उसके आगे पीछे नहीं। वह बालक कहेगा आप पागल तो नहीं हो गये, मैं याद करने का कोई निश्चित समय नहीं कर सकता। मुझे तो मेरी माँ की याद जब आयेगी तब आयेगी। तुम्हें क्या पता मुझे अपनी माँ की याद कब आयेगी, ठीक है तो जब याद आये वह समय लिख लेना, अरे भाई! वो मेरी माँ है, उसकी याद मुझे जब चाहे तब आ सकती है। इसे मैं तुम्हें नहीं बता सकता।

आत्मध्यान

महानुभाव! जैसे उस बालक को अपनी माँ की याद कभी भी सता सकती है। उसके लिये निश्चित समय या स्थान नहीं है। उसे भूखे रहने पर भी आ सकती है, प्यासे रहने पर भी आ सकती है, सोते समय भी आ सकती है, सपने में, जागते में कभी भी आ सकती है। ऐसे ही योगी के लिये आत्मा का अनुभव कभी भी हो सकता है। ये तो केवल बाह्य form है कि आप ध्यान मुद्रा में बैठे हो और चिंतन कर रहे हो तो ध्यान कह दिया। यह जरूरी नहीं है कि ऐसे बैठकर के आत्मा का ध्यान हो जाये। ऐसे मुद्रा बनाकर बैठने से गुणस्थान पहला भी हो सकता है और ग्यारहवाँ भी हो सकता है। और यदि मुद्रा नहीं भी हो चलते-चलते भी गुणस्थान 13वाँ हो सकता है। ऐसा नहीं है चलते-चलते 13वाँ गुणस्थान नहीं होता हो। कब किस समय आत्मा की अनुभूति घटित हो रही है वह अनुभूति तो वास्तव में वही जान सकते हैं। जब हम आत्मा के बारे में जान नहीं सकते तो सिद्धों की महिमा हम कैसे गा सकते हैं। सिद्धों के बारे में हमने

अपने मन के विकल्पों को शांत करने के लिये चार अस्तिरूप, चार नास्तिरूप मूलगुणों की स्थापना की। संसार में जितने भी विधिपरक धर्म होते हैं चेतना में उन सभी विधिपरक धर्मों को आत्मा का गुण माना है। जितनी आत्मा में निषेधपरक अवस्थायें हैं पुद्गल आदि के गुण हैं उन्हें निषेधपरक माना है।

सिद्धों की उपासना केवल 8 गुणों से 16, 32, 64, 128, 256, 512, 1024 से नहीं अनंत गुणों से भी की जा सकती है। आप जितना सोचते चले जाओ व्यवहार से उतने भेद करते चले जाओ, सिद्धों के उतने गुण होते चले जायेंगे। जितना मूल में जाओगे बस एक गुण है वह है सिद्ध। असिद्ध संसार है, सिद्ध मुक्त है।

सिद्ध अनुभवगम्य हैं आपके लिये अनुभव असंभव है जैसे पशु पर्याय में मनुष्य दशा का आनंद प्राप्त नहीं किया जा सकता। मनुष्य पर्याय का आनंद क्या है वह एक पशु को नहीं हो सकता। पशु पर्याय में, मनुष्य जिसे खा रहा है उस वस्तु को खाकर के आनंद ले सकता है किन्तु मनुष्य पर्याय क्या है, वह सूक्ष्म आनंद उस पशु के लिये असंभव है। पुरुष पर्याय का आनंद क्या है स्त्री के लिये असंभव है। नारी पर्याय की अनुभूति क्या है वह अनुभव कुँवारी कन्या के लिये असंभव है ऐसे ही आत्मा का अनुभव सराग अवस्था में असंभव है, वीतरागी दशा के बिना उस आत्मा का अनुभव नहीं हो सकता।

''अनुभव चारित से होत है, मात्र ज्ञान से नाहिं।
विषय-भोग-सुख ना मिले कुँवारी गीतन माहिं॥

कुँवारी कन्या कितने भी विषय-भोग के गीत गा ले, विषय भोग की अनुभूति वह नहीं कर सकती, ऐसे ही सरागी कितनी ही

वीतरागी की स्तुति करता चला जाये उसे वीतरागता का आनंद नहीं मिल सकता। जैसे सौधर्म इन्द्र व चक्रवर्ती को सिद्धों या अरिहंतों के आनंद की एक कणिका भी नहीं मिल सकती दोनों की quality अलग-अलग है। भौतिक सुख दोनों पर बहुत है पर quality अलग है उस परमार्थ का एक अंश भी उनके पास नहीं है। आप पढ़ते हैं छहढाला में-

यूँ चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनंद लह्यो।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा अहमिन्द्र के नांहि कह्यो॥

इन सबके आनंद को जोड़ दिया जाये, संसार के समस्त प्राणियों के आनंद को जोड़ दिया जाये तब भी सिद्धों जैसे आनंद का एक कण भी नहीं हो सकता। दोनों की quality अलग-अलग है।

भावना भवनाशिनी

महानुभाव! उस आनंद को प्राप्त करने के लिये सिद्धों की केवल साक्षी में उनकी उपासना कर रहे हैं। सिद्ध परमेष्ठी हमारे बीच प्रतिदिन आते भी होंगे यह भी कोई बड़ी बात नहीं है। आज भी छू करके चले जायें कोई बड़ी बात नहीं है। छः महिने 8 समय में 608 जीव मोक्ष जाते हैं। आचार्य यतिवृषभ स्वामी, आ. वसुनंदी स्वामी आदि मानते हैं कि प्रत्येक जीव समुद्घात करके मोक्ष जाता है। कुछ आचार्य कहते हैं नहीं भी जाता है। तो उनकी आत्मा हमें छू करके भी चली जाती है किन्तु हमें कोई आभास नहीं होता। उनका आभास उन्हीं को होगा। सिद्धों की एक दिन में औसत आत्मायें हमें छूकर के चली जाती हैं और हमें कोई आभास नहीं होता। उन सिद्धों का आभास उन सिद्धों को ही होगा उसी आत्मा को होगा। हम तो बस

उनकी परिकल्पना करके अपनी आत्मा को सिद्ध बनाने की चेष्टा कर रहे हैं। उस स्वाद को लेने की भावना भा रहे हैं। और 'भावना भव नाशिनी' भावना के माध्यम से वह अवस्था प्राप्त हो जाती है।

भावना में से जब भाते-भाते **'ना'** निकल जाता है तब मात्र भाव रह जाता है। **'वर्तमान पर्यायोपलक्षितः भावः'** वर्तमान पर्याय से परिलक्षित भाव कहलाते हैं। वही अनुभूति कहलाती है किन्तु उसे प्राप्त करने के लिये पहले भावना भायी जाती है। भावना नहीं बनायी तो भाव कभी आयेगा नहीं।

हम उन सिद्धों को प्रणाम करते हैं, उपासना, चिंतन-ध्यान करते हैं, हमारे पास कुछ शब्द नहीं हैं जो हम स्तुति कर सकें बस इतना सोच लेना हमारी आत्मा से निकली भावना ही स्तुति है, पूजा है, भक्ति है। इन कवियों की लिखी पूजा हमें सिद्ध नहीं बनायेगी। ये पूजा हममें सिद्धों की भावना जगायेगी। हमें सिद्ध बनायेगी हमारी भावना। किसी बालक से कहें अपनी माँ की याद वैसे करो जैसे मैं करता हूँ, वह कहेगा मुझे क्या पता तुम कैसे याद करते हो। तो जैसे दूसरे के रटे-रटाये शब्दों से माँ की याद नहीं आयेगी। रोना सिखाने के लिये स्कूल-कॉलेज नहीं होते, याद दिलाने के लिये कोई पाठशाला नहीं होती वह तो अपनी आत्मा से स्वयं ही आती है। ऐसे ही आपकी अंतरात्मा में जब सिद्धों को पाने की तीव्र प्यास जागेगी तो कदमों में गति अपने आप आ जायेगी।

प्यासा व्यक्ति आखिरकार पानी को प्राप्त कर ही लेता है। प्यास नहीं हो और पानी हमारे हाथ में भी हो फिर भी वह प्यास बुझा नहीं सकता। इसीलिये हमें सबसे पहले प्यास को जगाना है फिर बाद में पानी को पाना है। बिना प्यास जगाये पानी का कोई

औचित्य नहीं, मूल्य नहीं। प्यास यदि जग गयी तो पुनः कुछ नहीं करना पड़ेगा, सब स्वयमेव होता चला जायेगा। भगवान् से बस उसी प्यास को जगाने की प्रार्थना है, इसी प्रार्थना के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

॥श्री पार्श्वनाथ भगवान् की जय॥